ऐ तालिबे मंज़िल तू मंज़िल किधर देखता है।
दिल ही तेरी मंज़िल है, तू अपने दिल की ओर देख ।।

वर्ष : ९
अंक : ७७
९ मई १९९९

सम्पादक : क. रा. पटेल
प्रे. खो. मकवाणा

मूल्य : रू. ६-००

सदस्यता शुल्क

भारत, नेपाल व भूटान में

(१) वार्षिक : रू. ५०/-
(२) पंचवार्षिक : रू. २००/-
(३) आजीवन : रू. ५००/-

विदेशों में

(१) वार्षिक : US $ 30
(२) पंचवार्षिक : US $ 120
(३) आजीवन : US $ 300

कार्यालय
'ऋषि प्रसाद'
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आसारामजी आश्रम
साबरमती, अमदावाद-३८०००५.
फोन : (०७९) ७५०५०१०, ७५०५०११.

प्रकाशक और मुद्रक : क. रा. पटेल
श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा, साबरमती, अमदावाद-३८०००५ ने पारिजात प्रिन्टरी, राणीप, अमदावाद एवं पूर्वी प्रिन्टर्स, राजकोट में छपाकर प्रकाशित किया।

Subject to Ahmedabad Jurisdiction.

इस अंक में

पूज्यश्री के दर्शन-सत्संग

SONY चैनल पर 'ऋषि प्रसाद' रोज सुबह ७.३० से ८

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्रव्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें।

आखिरी बात

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

एक बार एक ब्रह्मवेत्ता महापुरुष को उनके शिष्य समुदाय ने घेर लिया एवं प्रार्थना की :

''गुरुजी ! हम सब आपके दर्शन तो कई बार करते हैं और अब हमें प्रभु के दर्शन करना चाहिए, प्रभुतत्त्व का साक्षात्कार करना चाहिए- यह सब भी हम समझते हैं, मानते हैं । अतः गुरुजी ! अब एक बार आप हमें आखिरी बात सुनाने की कृपा कर दीजिए।''

गुरु : ''हम तो ढूँढ़ते ही रहते हैं कि आखिरी बात सुननेवाला कोई मिल जाये । लगता है तुम लोगों को भगवान ने ही भेजा है।''

शिष्य : ''गुरुजी ! अब आप आखिरी बात सुना ही दीजिए।''

गुरु : ''जिस किसीको भी आखिरी बात सुननी है, वह मेरे जन्मदिन पर आ जाये।''

शिष्य : ''किस जन्मदिन पर ?''

गुरु : ''जिस दिन मेरे गुरु ने मुझे आत्म-साक्षात्कार कराया था, जिस दिन गुरुरूप में मेरा जन्म हुआ था, उस दिन तुम लोग आ जाना।''

चारों तरफ खबर फैल गयी कि अपने आत्म-साक्षात्कार के दिन गुरुजी आखिरी बात बतानेवाले हैं। अतः दूर-दराज से लोग गुरुआश्रम में एकत्रित होने लगे । कई विद्वान्, पंडित एवं शास्त्रज्ञ लोग भी आये। इस प्रकार वहाँ बड़ी भीड़ जमा हो गयी । बड़े-बड़े मण्डप बन गये । किन्तु उन महापुरुष को मानो, इन सबसे कोई लेना-देना ही नहीं था। वे तो अपनी कुटिया से सहज-स्वाभाविक मस्ती में बाहर निकले।

''सद्गुरु महाराज की जय...''

इस जयघोष से गगनमंडल गूँज उठा । जयघोष के बाद दो-चार प्रतिनिधि साधकों ने आगे बढ़कर कहा :

''गुरुजी ! आज वही दिन है, जिस दिन आप आखिरी बात सुनानेवाले हैं।''

गुरुजी : ''ठीक है। अच्छा हुआ, मुझे याद दिला दिया । आज आखिरी बात सुनानी है । सब लोग तैयार होकर बैठ जाओ।''

सब शांत होकर बैठ गये ताकि गुरुजी की आखिरी बात का एक शब्द भी कहीं छूट न जाये। आज तो मानो, कानों को भी आँखें फूट निकलीं कि हम सुनेंगे भी और देखेंगे भी। मानो, आँखों को कान फूट निकले कि हम निहारेंगे भी और सुनेंगे भी।

''आत्म-साक्षात्कार करना ही है तो उठो... जागो... अपने-आपसे पूछो कि : 'मैं कौन हूँ ?' अपने-आपको खोजो । खोजते समय जो कुछ तुम्हारे देखने में आता जाये, उसको हटाते जाओ... सूक्ष्म दृष्टि से मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदि को हटाते-हटाते जब तुम्हारी वृत्ति सूक्ष्म हो जायेगी, तब मौन को उपलब्ध हो जाओगे।''

इतने में वे महापुरुष मंच पर आये और सो गये । दस... बीस... तीस... चालीस... पचास मिनट हो गये, घण्टा... दो घण्टा हो गये... शिष्यों ने सोचा कि : 'पता नहीं, गुरुजी को क्या हो गया

है ?' लल्लू-पंजू शिष्य तो रवाना हो गये, लेकिन जो जिज्ञासु थे उन्होंने सोचा कि : 'बैठे-बैठे तो गुरुजी को कई बार सुना है, आज वे लेट गये हैं तो लेटे-लेटे ही कुछ-न-कुछ कहेंगे।'

इस प्रकार सब अपनी-अपनी मति एवं भावना के अनुसार विचारने लगे। फिर उनमें से भी कुछ लोग ऊबकर चले गये।

इस प्रकार लगभग चार घण्टे व्यतीत हो गये। अब कुछ गिने-गिनाये लोग ही बचे। तब गुरुजी उठे। उन्हें उठा हुआ देखकर प्रतिनिधि शिष्यों ने कहा :

''गुरुजी ! आज तो आपने बहुत देर तक आराम किया। अब तो चारों ओर लोग आपकी और हमारी मखौल उड़ायेंगे कि 'अच्छी आखिरी बात सुनायी...' गुरुजी ! आपने तो कुछ सुनाया ही नहीं, वरन् आराम करने लगे। आप कुटिया में आराम कर लेते। इधर लोगों के सामने मंच पर... ? गुरुजी ! आपने यह क्या किया ?''

गुरुजी : ''मैं सोया नहीं था।''

शिष्य : ''आप सोये नहीं थे ?''

गुरुजी : ''नहीं। तुम लोगों ने आखिरी बात सुनाने के लिए कहा था न ? मैंने वही आखिरी उपदेश दिया था। आत्म-साक्षात्कार कैसा होता है, यही मैंने बताया।

गहरी नींद में क्या होता है ? क्या उस वक्त पता चलता है कि 'मैं हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, पारसी, गुजराती, पंजाबी या सिंधी हूँ ?' अथवा 'कुछ है... कुछ खोया है ?' या फिर 'कुछ लेना है... कुछ देना है...' आदि ? नहीं। गहरी नींद में कुछ पता नहीं चलता, उस वक्त कोई स्फुरणा नहीं होती। ऐसे ही आत्म-साक्षात्कार का भी मतलब है कि चित्त में कोई स्फुरणा न हो। ज्ञानी के सब काम निःस्फुरण, निःसंकल्प एवं कर्त्तृत्वभाव से रहित होते हैं। अभी तक मैं यह बात सैद्धान्तिक तौर पर तो बोल ही रहा था किन्तु तुमने सुना नहीं, अतः आज मैंने प्रयोग करके बताया।''

शिष्य : ''गुरुजी ! क्या आत्म-साक्षात्कार सचमुच में ऐसा ही होता है ?''

गुरुजी : ''हाँ, सचमुच में, झूठमूठ में नहीं... जब आत्म-साक्षात्कार करना ही है तो उठो... जागो... अपने-आपसे पूछो कि : 'मैं कौन हूँ ?' अपने-आपको खोजो। खोजते समय जो कुछ तुम्हारे देखने में आता जाये, उसको हटाते जाओ। जैसे, यह भी नहीं... यह भी नहीं... मैं हाथ भी नहीं... पैर भी नहीं... हाथ और पैरों को क्रिया करने की प्रेरणा देनेवाला मन भी नहीं... मन को चलानेवाले प्राण भी नहीं... प्राण को चलानेवाली चिदावली भी नहीं... इस प्रकार सूक्ष्म दृष्टि से मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदि को हटाते-हटाते जब तुम्हारी वृत्ति सूक्ष्म हो जायेगी, तब मौन को उपलब्ध हो जाओगे।

जैसे, अँधेरे कमरे में पड़ी हुई किसी वस्तु को देखना है तो दीया, टॉर्च आदि काम आता है। किन्तु वही दीया जब सूर्य के सामने रखा जाता है तो उसका प्रकाश सूर्य के प्रकाश में समा जाता है। ऐसे ही व्यवहार-काल में, लेन-देन में, इधर-उधर के प्रसंगों में अथवा परमात्मा की खोज में मन-बुद्धि काम तो आते हैं किन्तु जब वे परमात्मप्रकाश में आ जाते हैं तो उनका यानी मन-बुद्धि का, टिमटिमाते दीये जैसा प्रकाश परमात्मा के प्रकाश में लीन हो जाता है। वे अंतर्मुख हो जाते हैं... शुद्ध हो जाते हैं।

लोहे के टुकड़े को एक बार पारस का स्पर्श करा दो तो फिर उसे कीचड़ में रखने पर भी जंग नहीं लगता, ऐसे ही मन-बुद्धि को परमात्मतत्त्व का एक बार अनुभव हो जाये, तो फिर उनमें जगत की सत्यता नहीं टिकती।

मन-बुद्धि से तुम जगत को जान सकते हो, परमात्मा को नहीं। फिर भी मन-बुद्धि ज्यों-ज्यों परमात्मा के अभिमुख होते जाते हैं, त्यों-त्यों परमात्मा में तदाकार होते जाते हैं। जैसे, नमक की पुतली सागर की थाह पाने जाये तो स्वयं सागर में ही समा जायेगी। फिर उसका अपना अलग से अस्तित्व नहीं रह जायेगा। ऐसे ही जब बुद्धि परमात्मा में स्थिर हो जाती है तो फिर वह बुद्धि, बुद्धि नहीं रहती, ऋतंभरा प्रज्ञा हो जाती है।

जैसे, नमक की पुतली सागर की थाह पाने जाये तो स्वयं सागर में ही समा जायेगी। फिर उसका अपना अलग से अस्तित्व नहीं रह जायेगा। ऐसे ही जब बुद्धि परमात्मा में स्थिर हो जाती है तो फिर वह बुद्धि, बुद्धि नहीं रहती, ऋतंभरा प्रज्ञा हो जाती है।

महापुरुष जब परमात्मा में डुबकी लगाकर कोई कार्य करते हैं, तब लोगों को लगता है कि उनके मन-बुद्धि एवं इन्द्रियों से कार्य हो रहा है। स्वयं महापुरुषों को कभी नहीं लगता कि 'ये मन, बुद्धि एवं इन्द्रियाँ हैं।' वे तो सदैव एक चैतन्य का अनुभव करते हैं... फिर भी यह बात वाणी से कही जा रही है। अन्यथा उस अनुभव के आगे तो वाणी भी अधूरी है। नानकजी ने कहा है :

मत करो वर्णन हर बेअंत है।
क्या जाने वो कैसो है ?

फिर भी उसके इर्द-गिर्द की बातें सुनने से जो पुण्य होता है वह पुण्य न तो तप करने से होता है, न यज्ञ करने से और न ही चांद्रायण व्रत करने से। इसीलिए बड़े-बड़े तपस्वी, यति-योगी, संन्यासी आदि भी सत्संग के अभाव में कई बार आत्म-साक्षात्कार की बात से चुक जाते हैं।

संत निश्चलदासजी ने 'विचारसागर' नाम का एक ग्रंथ लिखा है। उसमें आत्म-साक्षात्कार से संबंधित बातें भरी हुई हैं। एक दिन संत निश्चलदासजी ने कुछ साधुओं से कहा :

''सुबह पाँच बजे के समय बुद्धि सात्त्विक रहती है। वह समय ध्यान-भजन के लिए भी उपयुक्त रहता है। यदि तुम लोग चाहो तो उस समय तुम्हें 'विचारसागर' पढ़ाऊँगा।''

उनके पास अनेकों साधु आते थे। 'विचार-सागर' का सत्संग एक दिन... दो दिन... तीन दिन... चार दिन चला। फिर एक-एक करके साधु कम होने लगे। ज्यों-ज्यों संत गहरी बात सुनाते गये, त्यों-त्यों लोग ऊबते गये। आखिरकार धीरे-धीरे सब साधु भाग गये क्योंकि मन को रूखा लगता था न!

मन को थोड़ा मनोरंजन चाहिए। इन्द्रियों को भी रुचिकर भोग चाहिए। इन्द्रियविषयक भोगों का त्याग करते-करते, मन का त्याग करते-करते जब पूर्ण त्याग की घड़ियाँ आती हैं तब आत्म-साक्षात्कार हो जाता है। जैसे, लोहे के टुकड़े को एक बार पारस का स्पर्श करा दो तो फिर उसे कीचड़ में रखने पर भी जंग नहीं लगता, ऐसे ही मन-बुद्धि को परमात्मतत्त्व का एक बार अनुभव हो जाये, तो फिर उनमें जगत की सत्यता नहीं टिकती।

फिर वह पुरुष व्यवहार करता हुआ तो दिखेगा लेकिन उसका व्यवहार दिखनेमात्र का होगा। जैसे भुना हुआ बीज और कच्चा बीज, दोनों दिखते तो एक जैसे हैं लेकिन कच्चा बीज दूसरे बीज उत्पन्न करने की क्षमता रखता है जबकि भुना हुआ बीज दिखनेमात्र का होता है, वह अपनी वंश-परंपरा नहीं चला सकता। ऐसे ही मन जब ब्रह्मविद्या में भुना जाता है, तो उस मन से प्रारब्धवेग से थोड़ा-बहुत सांसारिक व्यवहार होता है लेकिन वह दूसरे कर्मों की जाल उत्पन्न नहीं करता। उसका जन्म-मरण का चक्र समाप्त हो जाता है। इसीलिए कबीरजी ने कहा है :

मन की मनसा मिट गयी, भरम गया सब टूट।
गगनमंडल में घर किया, काल रहा सिर कूट॥

वास्तविक कल्याण का मार्ग

[२ मई '९९ : नारद जयंती पर विशेष]

– पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

एक दिन राजा उग्रसेन ने भगवान श्रीकृष्ण से कहा : ''जनार्दन ! सब लोग नारदजी के गुणों की प्रशंसा करते हैं । इससे जान पड़ता है कि वे बड़े गुणवान् हैं । अतः तुम मुझसे उनके गुणों का वर्णन करो ।''

सच ही है; जो अपनी प्रशंसा स्वयं नहीं करता, सर्वत्र नारायण के नाम-कीर्तन व गुणगान में ही अनुरक्त रहता है, उसकी प्रशंसा सभी लोकों में विस्तरित हो जाती है तथा भगवान स्वयं उसका गुणगान करते हैं।

वास्तव में गुणहीन पुरुष ही अधिकतर अपनी तारीफ के पुल बाँधा करते हैं। वे अपने में गुणों की कमी देख दूसरे गुणवान् पुरुषों के दोष बताकर उन पर आक्षेप किया करते हैं । उनका यह कृत्य निंदनीय साबित होता है । किन्तु जो दूसरों की निंदा व अपनी प्रशंसा नहीं करता, ऐसा सर्वगुण-संपन्न विद्वान् ही यश का भागी होता है ।

फूलों की पवित्र एवं मनोहर सुगंध बिना बोले ही महककर अनुभव में आ जाती है तथा सूर्य भी बिना कुछ कहे ही आकाश में सबके समक्ष प्रकाशित हो जाता है । इसी प्रकार विद्वान् पुरुष गुफा में छिपा रहे, आत्मप्रशंसा न करे तो भी उसकी प्रसिद्धि सर्वत्र हो जाती है जबकि मूर्ख मनुष्य अपनी तारीफ की पुलें बाँधता रहता है, फिर भी संसार में उसकी ख्याति नहीं होती ।

नारदजी मनुष्य, देव, दानव सबको समान रूप से प्रिय हैं। संपूर्ण गुणों से सुशोभित, कार्यकुशल, समय का मूल्य समझनेवाले और आत्मतत्त्व के ज्ञाता नारदजी के गुणों की चर्चा भगवान श्रीकृष्ण करते हैं :

एक समय गालव मुनि ने कल्याण-प्राप्ति की इच्छा से अपने आश्रम पर पधारे हुए ज्ञानानंद से परिपूर्ण व मन को सदा अपने वश में रखनेवाले देवर्षि नारद से पूछा :

''भगवन् ! आप उत्तम गुणों से युक्त और ज्ञानी हैं। लोकतत्त्व के ज्ञान से शून्य और चिरकाल से अज्ञान में पड़े हुए हम जैसे लोगों के संशय का निवारण सर्वगुणसंपन्न आप जैसे ज्ञानी महात्मा ही कर सकते हैं।

शास्त्रों में बहुत से कर्त्तव्य-कर्म बताये गये हैं । उनमें से जिसके अनुष्ठान से ज्ञान में मेरी प्रवृत्ति हो सकती है, उसका मैं निश्चय नहीं कर पाता हूँ। इसलिए मैं आपकी शरण में आया हूँ । आप कृपा करके मुझे श्रेय (कल्याण) के वास्तविक मार्ग का उपदेश कीजिए ।''

नारदजी कहते हैं : ''तात ! जो अच्छी तरह कल्याण करनेवाला और संशय से रहित हो, उसे ही 'श्रेय' कहते हैं। पापकर्म से दूर रहना, पुण्यकर्मों का निरन्तर अनुष्ठान करना, सत्पुरुषों के साथ रहकर सदाचार का ठीक-ठीक पालन करना, सम्पूर्ण प्राणियों के प्रति कोमल एवं व्यवहार में सरल होना, मीठी वाणी बोलना, देवताओं, पितरों और अतिथियों को उनका भाग देना तथा भरण-पोषण करने योग्य व्यक्तियों का त्याग न करना - यह श्रेय का निश्चित साधन है ।

सत्य बोलना ही श्रेयस्कर है । मैं तो उसे ही

सत्य कहता हूँ, जिससे प्राणियों का अत्यंत हित होता हो।

अकेले रहकर धर्म का पालन, धर्माचरण-पूर्वक वेद-वेदान्तों का स्वाध्याय तथा उनके सिद्धांतों को जानने की इच्छा कल्याण का अमोघ साधन है।

जिसे कल्याण-प्राप्ति की इच्छा हो उस मनुष्य को शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध- इन विषयों का अधिक सेवन नहीं करना चाहिए।

रात में घूमना, दिन में सोना, आलस्य, चुगली, गर्व, अधिक परिश्रम करना अथवा परिश्रम से बिल्कुल दूर रहना- ये सब बातें श्रेय चाहनेवाले के लिए त्याज्य हैं।

दूसरों की निंदा करके अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। साधारण मनुष्यों की अपेक्षा अपने में जो विशेषता है, वह उत्तम गुणों द्वारा ही प्रकट होना चाहिए।

वास्तव में गुणहीन पुरुष ही अधिकतर अपनी तारीफ के पुल बाँधा करते हैं। वे अपने में गुणों की कमी देख दूसरे गुणवान् पुरुषों के दोष बताकर उन पर आक्षेप किया करते हैं।

मनुष्य को सदा धर्म में लगे रहनेवाले साधु-महात्माओं तथा स्वधर्मपरायण उदार पुरुषों के समीप निवास करने का प्रयास करना चाहिए।

किसी कर्म का आरंभ न करनेवाला और जो कुछ मिल जाय उसीसे संतुष्ट रहनेवाला पुरुष भी पुण्यात्माओं के साथ रहने से पुण्य का और पापियों के संसर्ग में रहने से पाप का भागी होता है।

जैसे जल और अग्नि के संसर्ग से क्रमशः शांत और उष्ण स्पर्श का अनुभव होता है, उसी प्रकार पुण्यात्माओं और पापियों के संग से पुण्य एवं पाप दोनों का संयोग हो जाता है।

जो पुरुष अपनी रसना का विषय समझकर स्वादु-अस्वादु का विचार रखते हुए भोजन करते हैं उन्हें कर्मपाश में बँधे हुए समझना चाहिए। रसास्वादन की ओर दृष्टि न रखकर जीवन-निर्वाह के लिए भोजन करना ही श्रेय है।''

निन्दकों और पाखण्डियों के संग से दूर रहने का उपदेश देते हुए देवर्षि नारदजी 'मोक्षधर्म पर्व' में कहते हैं :

आकाशस्थ ध्रुवं यत्र दोषं ब्रुयुर्विपश्चिताम्।
आत्मपूजाभिः कामो वै को वसेत्तत्रः पण्डितः ॥४३॥
यत्र संलोडिता लुब्धैः प्रावशो धर्मसेतवः।
प्रदीप्तमिव चैलान्तं कस्तं देशं न संत्यजेत् ॥४४॥

''जहाँ के लोग बिना किसी आधार के ही विद्वानों पर दोषारोपण करते हों, उस देश में आत्मसम्मान की इच्छा रखनेवाला कौन मनुष्य निवास करेगा ?''

जहाँ लालची मनुष्यों ने प्रायः धर्म की मर्यादाएँ तोड़ डाली हों, जलते हुए कपड़े की भाँति उस देश को कौन नहीं त्याग देगा ?''

पापकर्म से जीविकोपार्जन करनेवाले लोगों के संग से दूर रहने का उपदेश देते हुए कहते हैं कि :

कर्मणा यत्र पापेन वर्तन्ते जीवितेप्सवः।
त्यवधावेत्ततस्तूर्णं ससर्पाच्छरणादिवं ॥४७॥

''जहाँ जीवन की रक्षा के लिए लोग पापकर्म से जीविका चलाते हों, सर्पयुक्त घर के समान उस स्थान से तुरन्त दूर हट जाना चाहिए।''

अन्त में, पापकर्म से दूर रहने की प्रेरणा देते हुए नारदजी साधकों को सावधान करते हैं कि :

येन खटवां समारूढ कर्मणानुशयी भवेत्।
आदि तस्तन्न कर्त्तव्यमिच्छता कुभवमात्मेनः ॥४८॥

''अपनी उन्नति की इच्छा रखनेवाले साधक को चाहिए कि जिस पापकर्म के संस्कारों से युक्त हुआ मनुष्य खाट पर पड़कर दुःख भोगता है, उस कर्म को पहले से ही न करें।''

भक्ति के दुःखों की निवृत्ति

- *पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू*

'श्रीमद्भागवतमाहात्म्यम्' के प्रथम अध्याय में कथा आती है :

एक बार नारदजी विचरण करते-करते भगवान श्रीकृष्ण की लीलास्थली वृंदावन में जा पहुँचे । वहाँ पर उन्होंने देखा कि एक युवती के पास दो वृद्ध पुरुष अचेत-से पड़े हुए हैं और वह युवती कभी उन्हें होश में लाने का प्रयत्न करती है तो कभी उनके आगे रो पड़ती है। उस युवती के चारों ओर सैकड़ों स्त्रियाँ घेरकर बैठी हैं जिनमें से कोई तो उसे पंखा झल रही हैं और कोई उसे ढाढ़स बँधाने का प्रयत्न कर रही हैं। इतने में उस युवती की नजर नारदजी पर पड़ी और वह खड़ी होकर नारदजी से बोली :

भो भोः साधो क्षणं तिष्ठ मच्चिन्तामपि नाशय ।
दर्शनं तव लोकस्य सर्वथाघहरं परम् ॥
बहुधा तव वाक्येन दुःखशांतिर्भविष्यति ।
यदा भाग्यं भवेद्भूरि भवतो दर्शनं तदा ॥

(श्रीमद्भागवतमाहात्म्य : अ.१ श्लोक ४२-४३)

''हे महात्माजी ! क्षणभर ठहर जाइये और मेरी चिंता को भी नष्ट कर दीजिये। आपका दर्शन तो संसार के सभी पापों को सर्वथा नष्ट कर देनेवाला है।

आपके वचनों से मेरे दुःख की भी बहुत कुछ शांति हो जाएगी। मनुष्य का जब बड़ा भाग्य होता है, तभी आपके दर्शन हुआ करते हैं।''

नारदजी ने पूछा : ''तुम कौन हो ?''

युवती : ''मेरा नाम भक्ति है। द्रविड़ देश में मैं उत्पन्न हुई, कर्नाटक में बढ़ी, महाराष्ट्र में सम्मानित हुई और गुजरात में मैं अंग-भंग हुई। अब वृंदावन में आकर मैं थोड़ी पुष्ट हुई हूँ लेकिन यहाँ आकर मेरे दोनों पुत्र ज्ञान और वैराग्य कलियुग के प्रभाव से वृद्ध होकर मूर्च्छित हो गये हैं। होना तो यह चाहिए कि माँ बूढ़ी हो और बेटे ज़वान, लेकिन यह तो उलटा हो गया है। बेटे वृद्ध होकर मूर्च्छित पड़े हैं। कई उपाय करने पर भी इनकी मूर्च्छा नहीं टूटती। महाराज ! आपके दर्शन से मेरे हृदय के ताप मिट रहे हैं। आप कुछ देर और ठहरिये।''

> *''भक्ति का दुःख दूर करने का एक ही उपाय है कि कलियुग के दोषों को दूर करनेवाली भगवत्कथा सुनायी जाये, तभी ज्ञान और वैराग्य पुष्ट हो सकेंगे।''*

संत के दर्शन से पातक नष्ट होते हैं और पातक नष्ट होने से हृदय का ताप निवृत्त होता है। नानकजी ने भी कहा है :

संत शरण जो जन पड़े, सो जन उधरणहार।
संत की निंदा नानका, बहुरि-बहुरि अवतार॥

नानकजी ने यह भी कहा है :

बड़भागी ते जन जगमाहीं,
सदा-सदा हरि के गुन गाहीं ।
राम नाम जो करहिं विचार,
ते धनवन्ता गने संसार ॥

भक्ति रो रही है और हमें यही सीख दे रही है कि अगर भक्ति करनी है तो ज्ञान और वैराग्य को जागृत रखो। तुम जिसकी भक्ति करते हो, उस

परमेश्वर के स्वरूप का ज्ञान ही न होगा तो तुम किसकी भक्ति करोगे ? 'भगवान क्या है ? आत्मा क्या है ? परमेश्वर क्या है ? मुक्ति कैसे होती है ? वह परमात्मा हमारी आत्मा है तो मिले कैसे ? जगत की उत्पत्ति कैसे हुई ? बदलनेवाले जगत को भी जो देख रहा है, वह अबदल तत्त्व क्या है ?' ऐसा ज्ञान होना चाहिए और सुख-दुःख व संसार के राग-द्वेष की निवृत्ति के लिए वैराग्य होना चाहिए । अगर जीवन में भक्ति के साथ ज्ञान-वैराग्य नहीं होंगे तो भक्ति रोती रहेगी ।

भगत जगत को ठगत है, भगत को ठगे न कोई।
एक बार जो भगत ठगे, अखण्ड यज्ञफल होई ॥

भक्त का मतलब बुद्धू नहीं, आलसी नहीं, प्रमादी नहीं... जिसका मन आत्मा-परमात्मा में निमग्न रहता हो, उसका नाम है भक्त। नानकजी भक्तशिरोमणि थे । प्रह्लाद, मीरा, कबीरजी आदि भी भक्तशिरोमणि थे।

भक्ति नारदजी से प्रार्थना करती है :

''महाराज ! आप मेरे दुःखों को निवृत्त कीजिए।''

तब नारदजी ने शपथ ली : ''यदि मैंने तुम्हारे पुत्रों को जागृत न किया और तुझे घर-घर में, हृदय-हृदय में स्थापित न किया तो मैं भगवान का भक्त नहीं ।''

भक्ति रो रही है और हमें यही सीख दे रही है कि अगर भक्ति करनी है तो ज्ञान और वैराग्य को जागृत रखो । तुम जिसकी भक्ति करते हो, उस परमेश्वर के स्वरूप का ज्ञान ही न होगा तो तुम किसकी भक्ति करोगे ? अगर जीवन में भक्ति के साथ ज्ञान-वैराग्य नहीं होंगे तो भक्ति रोती रहेगी ।

देखो, सच्चे भगवद्भक्तों का कैसा निश्चय होता है ! कितनी हिम्मत होती है ! कितना सामर्थ्य होता है उनके संकल्प में ! एक सामान्य आदमी भी अगर दृढ़ संकल्प करता है कि 'मुझे यह शुभ कर्म करना है' तो ईश्वर की सत्ता उसे सहयोग देती ही है और देर-सबेर वह उस दैवी कार्य में सफल होकर ही रहता है । जिस कार्य से बहुतों का हित होता है, मंगल होता है उस कार्य को करने का विचार यदि एक साधारण व्यक्ति भी अपने मन में ठान लेता है तो हजारों-लाखों व्यक्ति देर-सबेर उसके साथ सहयोग करने के लिए जुड़ जाते हैं।

भक्त यह सदैव याद रखे कि : 'मैं अकेला नहीं हूँ । सच्चिदानंद परमात्मा हमेशा मेरे साथ है । मेरे साथ उस परमेश्वर की सत्ता विद्यमान है । मैं अकेला नहीं हूँ । अनंत-अनंत शक्तियाँ मेरे साथ हैं ।'

एक साधारण-सी लड़की भी यदि सत्कर्म करने की कोई बात ठान लेती है तो परिस्थितियाँ उसके अनुकूल होने के लिए बाध्य हो जाती हैं।

बुद्ध के जमाने में एक बार श्रावस्ती नगरी में अकाल पड़ा। अकाल भी ऐसा कि बालक, बूढ़े एवं कमजोर आदमी अन्न के अभाव में मरने लगे । सेठों ने अपनी तिजोरियों को ताले लगा दिये । राज्यसत्ता ने भी हाथ ऊँचे कर दिये ।

यह सब देखकर बुद्ध को बहुत दुःख हुआ । संत-हृदय चुप कैसे रह सकता है ? 'मुट्ठीभर अन्न के अभाव में लोग रोज मर रहे हैं और सेठों की तिजोरियाँ खुलती नहीं । धनवानों का धन यदि ऐसे अकाल के समय काम नहीं आया तो फिर वह धन किस काम का ?'

बुद्ध ने श्रावस्ती के धनवान् लोगों की एक सभा बुलायी । करुणा से भरे हुए बुद्ध ने अपनी करुणामयी वाणी में सेठों से कहा : ''इस अकाल के समय में आप सभी को कुछ सेवाकार्य करना

चाहिए ताकि अन्न के अभाव में मर रहे लोगों को बचाया जा सके।''

...लेकिन करुणा से भरा हुआ, प्राणिमात्र के हित की भावना से छलकता हुआ बुद्ध का यह उपदेश भी उन लोभी सेठों के चित्त पर कोई असर नहीं कर रहा था। बुद्ध ने चारों ओर नजर डालकर कहा : ''भाइयों ! कुछ कहो।'' यह सुनकर वे लोभी सेठ, धन के गुलाम सेठ एक-दूसरे की ओर देखने लगे। उनमें से एक ने कहा :

''महाराज ! पूरे राज्य में दुर्भिक्ष पड़ा है। हमारी तिजोरी कितने आदमियों को खिलायेगी ? यह किसी एक आदमी का काम नहीं है। यह तो राज्य का काम है।''

दूसरा बोला : ''राज्य का धन भी समाप्त हो जायेगा तब क्या करेंगे ? यह तो ईश्वर का काम है ईश्वर का। हम तो केवल प्रार्थना करें कि : 'हे भगवान ! अपने बंदों को अब तुम्हीं बचाओ।' इसके अलावा हम कर ही क्या सकते हैं ?''

ऐसा कहते-कहते सब सेठ वहाँ से एक-एक करके खिसकने लगे। इतने में ही एक धनवान् सेठ की कन्या सुप्रिया की आँखों से आँसू बहने लगे। बुद्ध की सभा में निराशा नृत्य करे, उसके पहले ही उसने एक आशा की किरण जगा दी। उसने कहा :

''भन्ते ! जो अन्न के अभाव में मर रहे हैं, अन्न के मोहताज उन गरीबों को, उन देशवासियों को मैं खिलाऊँगी। भन्ते ! आप आशीर्वाद दें कि मैं इस कार्य में सफल हो सकूँ।''

''भन्ते ! जो अन्न के अभाव में मर रहे हैं, अन्न के मोहताज उन गरीबों को, उन देशवासियों को मैं खिलाऊँगी। भन्ते ! आप आशीर्वाद दें कि मैं इस कार्य में सफल हो सकूँ।''

लोग हक्के-बक्के रह गये ! 'यह लड़की ! सुप्रिया !!' वे बोले : ''तू क्या खिलायेगी ? तेरा सेठ पिता तुझे पैसे नहीं देगा तो तू क्या करेगी ?''

सुप्रिया : ''मेरे पिताजी पैसे नहीं देंगे तो कोई बात नहीं। मैं अपने हाथ में भिक्षापात्र उठाऊँगी और घर-घर भीख माँगकर भी अपने देशवासियों के मुँह में रोटी का टुकड़ा डालूँगी... उनके आँसू पोंछूँगी।''

दृढ़ निश्चय से भरी हुई उस लड़की की बात सुनकर बुद्ध के मन को संतोष हुआ। बुद्ध की आँखें चमक उठीं और करुणामयी दृष्टि बरसाते हुए वे बोल उठे : ''धन्य, धन्य ! तेरे माता-पिता भी धन्य हैं। तू लोगों की भूख अवश्य मिटा सकेगी। तू देशवासियों के प्राण अवश्य बचा सकेगी।''

लोग व्यंग कसने लगे कि : 'जैसी पगली लड़की, वैसा पगला बाबा...'

जैसे महात्मा गाँधी ने भी कहा था कि : ''अंग्रेजों ! भारत छोड़ो।'' यह उद्घोष करनेवाले महात्मा गाँधी अकेले थे। अतः लोगों ने उनकी खूब मजाक उड़ायी और वायसराय ने तो उन्हें 'पागल' ही कह दिया था। पूरी ब्रिटिश सरकार के आगे एक मोहनदास करमचंद गाँधी बोलता है कि 'अंग्रेजों ! भारत छोड़ो।' लेकिन शुभ संकल्प में बड़ी ताकत होती है। जितना स्वार्थरहित संकल्प होता है, उतनी ही परमात्मा की सत्ता उसके साथ जुड़ जाती है।

जिस कार्य से बहुतों का हित होता है, मंगल होता है उस कार्य को करने का विचार यदि एक साधारण व्यक्ति भी अपने मन में ठान लेता है तो हजारों-लाखों व्यक्ति देर-सबेर उसके साथ सहयोग करने के लिए जुड़ जाते हैं।

तुम्हारे पास चाहे कुछ भी हो, मुट्ठीभर अन्न हो या जरा-सा समय हो अथवा कम योग्यता हो लेकिन यदि ईश्वर के नाते

तुम उसे सत्कर्म में लगा देते हो तो वह अथाह-अगाध हो जाता है।

सुप्रिया ने दृढ़ संकल्प कर लिया था, अतः दूसरे दिन सुबह होते ही उसने अपने हाथ में एक भिक्षापात्र उठाया और अपने माता-पिता से बोली :

''मेरे हिस्से की रोटी तो आप मुझे देते ही हैं, अतः कम-से-कम वे ही रोटियाँ मुझे भिक्षा में दे दीजिए।''

लड़की का दृढ़ निश्चय देखकर पिता की आँखों में आँसू आ गये। माँ का हृदय भर आया। उन्होंने थोड़ी ज्यादा भिक्षा दे दी। आठ-दस लोग भोजन कर सकें इतनी भिक्षा दे दी। सुप्रिया वहाँ से चल पड़ी और दूसरे द्वारों पर गयी। सुप्रिया को भिक्षा माँगते हुए देखकर अब सेठों का हृदय पिघलने लगा कि : 'जो हमें करना चाहिए था, वह कार्य यह एक नन्हीं-सी बालिका कर रही है ! धिक्कार है हमारे लोभ को और धिक्कार है हमारे ऐसे वैभव को, जो मानव जाति के काम न आये !'

तन मन धन से कीजिए, निशिदिन पर उपकार।

यह सद्भाव उनके मन में जाग उठा और सब सेठ लग गये अकाल-राहत कार्य में। श्रावस्ती का अकाल दूर हो गया। लाखों-लाखों जीवों को जीवनदान मिला एक सुप्रिया के संकल्प मात्र से।

एक शुभ संकल्प करो और उसमें डट जाओ।

इसी प्रकार दृढ़ निश्चय के साथ नारदजी भक्ति के दुःखनिवारणार्थ भ्रमण करने निकल पड़े। जब वे विशालापुरी से गुजरे तो उनकी भेंट सनकादि ऋषियों से हुई। सनकादि ऋषियों ने पूछा :

''नारद ! उदास पुरुष की नाईं तुम जल्दी-जल्दी कहाँ जा रहे हो ?''

नारद : ''भगवन् ! मैं काशी, मथुरा, रंगक्षेत्र, रामेश्वरम्, द्वारिका, हरिद्वार आदि क्षेत्रों में गया किन्तु कहीं भी, किसी भी तीर्थ में शांति देनेवाले महापुरुष के दर्शन मुझे नहीं हुए। कलियुग के मित्र अधर्म ने तीर्थों को भी बिगाड़ दिया है। धूर्त लोग तीर्थों एवं मंदिरों पर अधिकार करने लग गये हैं। जीवन को शांति मिले, ऐसी कोई जगह न दिखी। भूमण्डल पर घूमते-घूमते, पुष्कर और प्रयाग में घूमते-घूमते मैं वृन्दावन आया जहाँ मुझे एक युवती अपने दो वृद्ध एवं मूर्च्छित पुत्रों ज्ञान और वैराग्य के पास बैठकर विलाप करती हुई दिखी, जो चारों ओर से अपनी सखियों से घिरी हुई थी। उसका नाम भक्ति है। प्रभो ! मैंने शपथ ली है कि उस भक्ति के दुःख को दूर करूँगा और उसके पुत्रों, ज्ञान-वैराग्य को जागृत करूँगा। मैंने कई मंत्रोच्चारण किये, वेद-पाठ किया, कई बार उन्हें जगाया लेकिन वे पुनः मूर्च्छित हो जाते थे। फिर आकाशवाणी हुई कि : 'हे नारद ! तुम उद्योग करो, तब तुम सफल होगे।' किन्तु महाराज ! मैं कौन-सा उद्योग करूँ ? आकाशवाणी ने कुछ स्पष्ट नहीं बताया। ज्ञान-वैराग्य को जागृत करने के तरीके जानने के लिए मैं मठों, मंदिरों एवं आश्रमों आदि में घूमा लेकिन उसका उपाय कोई नहीं बता सका।''

तब सनकादि ऋषियों ने कहा :

''भक्ति का दुःख दूर करने का एक ही उपाय है कि कलियुग के दोषों को दूर करनेवाली

''मेरे दोनों पुत्र वृद्ध होकर मूर्च्छित हो गये हैं। होना तो यह चाहिए कि माँ बूढ़ी हो और बेटे जवान, लेकिन यह तो उलटा हो गया है। बेटे वृद्ध होकर मूर्च्छित पड़े हैं। कई उपाय करने पर भी इनकी मूर्च्छा नहीं टूटती। महाराज ! आपके दर्शन से मेरे हृदय के ताप मिट रहे हैं। आप कुछ देर और ठहरिये।''

भगवत्कथा सुनायी जाये, तभी ज्ञान और वैराग्य पुष्ट हो सकेंगे।''

अतः जो लोग भक्ति का रसपान करना चाहते हैं, उन्हें इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि कलियुग के दोषों को दूर करने के लिए भगवत्कथा सुनें जिससे ज्ञान-वैराग्य पुष्ट हो सकें। सनकादि ऋषियों ने आगे कहा :

''श्रीमद्भागवत का पारायण किया जाये। उसके शब्द सुनने से ही ज्ञान और वैराग्य को बड़ा बल मिलेगा। इससे उनका कष्ट मिट जायेगा अर्थात् उनकी मूर्च्छा टूट जायेगी और साथ ही भक्ति भी पुष्ट होगी। जैसे सिंह की गर्जना सुनकर भेड़िये भाग जाते हैं, उसी प्रकार श्रीमद्भागवत की अनुगूँज से कलियुग के सारे दोष नष्ट हो जायेंगे। तब प्रेमरस प्रवाहित करनेवाली भक्ति ज्ञान और वैराग्य को साथ में लेकर प्रत्येक घर और व्यक्ति के हृदय में क्रीड़ा करेगी।''

सनकादि ऋषियों की आज्ञा को शिरोधार्य करके देवर्षि नारद ने हरिद्वार में गंगातट पर 'श्रीमद्भागवत' कथा का आयोजन किया जिसके फलस्वरूप ज्ञान-वैराग्य जाग उठे एवं भक्ति पुष्ट हो गयी। इतनी महत्ता है 'श्रीमद्भागवत' के कथामृत का पान करने की ! तभी तो 'श्रीमद्भागवतमाहात्म्य' के विषय में स्वयं भगवान ने अपने श्रीमुख से ब्रह्माजी को कहा है :

श्रीमद्भागवतं पुण्यमायुरारोग्य पुष्टिदम्।
पठनाच्छ्रवणाद्वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

'यह पावन पुराण 'श्रीमद्भागवत' आयु, आरोग्यता और पुष्टि देनेवाला है। इसका पाठ अथवा श्रवण करने से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है।'

इस पवित्र पुराण का पाठ स्वयं करें या पवित्र, सात्त्विक, व्यसनमुक्त, संत-हृदय वक्ता के मुख से सुनें।

*

योगसिद्ध ब्रह्मलीन ब्रह्मनिष्ठ
प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद स्वामी श्री

लीलाशाहजी महाराज : एक दिव्य विभूति

[गतांक का-शेष]

हरिलीला के घर पर रोज सुबह ८ से १० बजे तक सत्संग होता था जिसका लाभ अनेकों भक्तों ने लिया। ये सत्संग वहाँ के समाचार पत्रों, आकाशवाणी एवं दूरदर्शन द्वारा प्रसारित किये जाते थे। एक दिन पूज्य स्वामीजी ने बच्चों का लालन-पालन किस प्रकार करना चाहिए एवं उन्हें कैसे संस्कार देने चाहिए, इस विषय पर सत्संग देते हुए कहा :

''माता-पिता को सूक्ष्म दृष्टि रखकर बचपन से ही बच्चों के रहन-सहन, आहार, शिष्टाचार, पढ़ाई एवं सदाचार के ऊपर ध्यान देना चाहिए। बच्चों को स्वच्छता की बातें सिखानी चाहिए। बच्चों में रोज जल्दी उठने की आदत डालनी

चाहिए। ब्रह्ममुहूर्त में उठने से आयु, बल एवं बुद्धि बढ़ती है। बचपन से ही चबा-चबाकर खाना सिखाना चाहिए। दैवी संपदा के गुण सिखाने चाहिए। माता-पिता को किसी भी समय बच्चों के सामने खराब शब्द नहीं बोलने चाहिए, झगड़ा नहीं करना चाहिए। बच्चों को कभी डराना नहीं चाहिए। उन्हें रोज प्रार्थना करना सिखाना चाहिए। बच्चों के आहार पर विशेष ध्यान देना चाहिए। तामसी एवं रजोगुणी आहार जैसे कि लाल मिर्च, चटनी, कुल्फी, गोल-गप्पे जैसी चीजें नहीं खिलानी चाहिए। अच्छी-अच्छी, धार्मिक, नैतिक, सदाचारयुक्त एवं शूरवीरता के विचारोंवाली कथाएँ कहनी चाहिए।''

''धन कमाना जरूरी है किंतु सच्चाई से कमाना चाहिए। अनीति की कमाई से बरबादी ही होती है। व्यापार में लाभ लेने की मनाही नहीं है लेकिन जब कोई ग्राहक आये तो समझना चाहिए कि उसके रूप में स्वयं भगवान आये हैं।''

पूज्य स्वामीजी ने १४ अक्तूबर के दिन शाम को यौगिक एवं हठयोग की क्रियाएँ बतायीं जिसका लाभ दूरदर्शन पर ४० लाख हाँगकाँगवासियों ने लिया।

पूज्य स्वामीजी सत्संग के दौरान कहते कि :

''धन कमाना जरूरी है किंतु सच्चाई से कमाना चाहिए। धंधे में वस्तु के तौल-माप में भी सावधानी एवं प्रामाणिकता रखनी चाहिए। अनीति की कमाई नहीं करनी चाहिए। इससे बरबादी ही होती है। गृहस्थियों के हृदय में कभी-भी किसीके लिए द्वेष, कपट अथवा ठगने की भावना नहीं होनी चाहिए। व्यापार में लाभ लेने की मनाही नहीं है लेकिन जब कोई ग्राहक आये तो समझना चाहिए कि उसके रूप में स्वयं भगवान आये हैं। उसके साथ छल-कपट होगा तो वह भगवान के साथ छल-कपट किया गया माना जायेगा। केवल मुँह से रामनाम लेने से क्या लाभ? वाणी एवं कर्म में सच्चाई होनी चाहिए। पहले के जमाने में भी गृहस्थी लोग खाते-पीते एवं खटास-मिठास का अनुभव करते थे, परंतु वे अपना जीवन बड़ी सादगी से जीते थे। मन एवं इन्द्रियों को वश में रखते थे। शास्त्र एवं ईश्वर की आज्ञा के अनुसार शांतिमय, स्नेहमय जीवन जीते थे। हमें भी सादगीयुक्त, साहसी एवं स्नेही होना चाहिए।''

इस प्रकार स्वामीजी गृहस्थियों को शुभ कर्म में रत रहने का उपदेश देते थे। यदि कोई वैराग्य-संपन्न होता एवं ज्ञान का अधिकारी होता तो उसे वेदान्त के साधन-चतुष्टय बताकर वेदान्त के प्रक्रिया ग्रंथ समझाते थे। जो ज्ञान के सच्चे अधिकारी होते थे उन्हें वे 'पंचदशी', 'उपदेशसहस्री', 'विचारसागर' जैसे ग्रंथों का श्रवण करवाते। साथ-ही-साथ गीता व उपनिषद् भी समझाते। जिन्हें निष्ठा की जरूरत थी उन्हें 'जीवन्मुक्तिविवेक' एवं 'पातंजल योगदर्शन' पढ़ाते।

''माता-पिता को सूक्ष्म दृष्टि रखकर बचपन से ही बच्चों के रहन-सहन, आहार, शिष्टाचार, पढ़ाई एवं सदाचार के ऊपर ध्यान देना चाहिए। माता-पिता को किसी भी समय बच्चों के सामने खराब शब्द नहीं बोलने चाहिए, झगड़ा नहीं करना चाहिए।''

उनके लिए कोई जातिभेद नहीं था किन्तु सच्चे विरक्त जिज्ञासु पर उनकी करुणा-दृष्टि बनी रहती थी। सुबह अथवा शाम को जब पहाड़ों पर घूमने जाते तब मार्ग में चलते-चलते जिज्ञासुओं को ब्रह्म-उपदेश देते।

*

सबसे ऊँची प्रेम-सगाई

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

भाव हि कारण ईश है, न स्वर्ण काठ पाषान।
सत चित आनंदरूप है, व्यापक है भगवान ॥
ब्रह्मेशान जनार्दन, सारद सेस गणेश।
निराकार साकार है, है सर्वत्र भवेश ॥

जो सर्वत्र है, सदा है, जिसके सिवाय और कुछ है ही नहीं, ऐसे सर्वशक्तिमान् परमात्मा को पाना है तो निःस्वार्थ भाव से, शुद्ध हृदय से उसे प्रेम करो। फिर देखो तुम्हें क्या मिलता है,!

मेरा प्यारा भूखा है प्रेम का...

उस परम प्रेमास्पद को कोई अपनी अक्ल-होशियारी से पाना चाहे, बुद्धि के बल से रिझाना चाहे तो वह उससे दो कदम दूर ही रह जाता है। लेकिन जब कोई बोलता है कि : 'हाय ! अब तो मुझसे चला भी नहीं जाता। मैं तुझ तक कैसे पहुँच पाऊँगा ? अब तो तू ही जान, प्रभु !'... इस प्रकार अपना प्रेम-भरा हृदय जब उसे समर्पित करता है तो उसी वक्त प्रेमास्पद का आनंद हृदय में प्रगट होता है।

उस परमात्मा तक पहुँचना है तो कोई पैरों से चलकर थोड़े ही जाना है ! उसको प्रेम करते रहो, रिझाते रहो तो वासनाओं, कल्पनाओं एवं अपनी पुरानी मान्यताओं के आवरण दूर होते ही हृदय में आत्मानंद छलकेगा। वास्तव में यही उस हृदयस्थ अंतर्यामी परमात्मा तक पहुँचना है।

तुम संसार का काम तो सँभालते रहो, ठीक है किन्तु उस अन्तर्यामी परमात्मा से जुड़े रहकर सँभालोगे तो तुम सफलता-विफलता से प्रभावित नहीं होगे। उस प्रेमास्पद में मन लगाते रहोगे तो तुम भी प्रेममय हो जाओगे। किसी भी रूप में तुम उससे अपना प्रेमसंबंध बाँध लो। फिर वह तो अपना संबंध निभाना बखूबी जानता है।

एक साधक था जो योग-साधना करता था किन्तु उसके चित्त को अभी प्रेमाभक्ति का रंग नहीं लगा था और उसे कोई तत्त्वज्ञानी गुरु भी नहीं मिले थे। योग-साधना करते-करते उसे अपने अंतर्मन में कुछ रूखापन मालूम पड़ा। उसके मन में आया कि : 'शादी की होती और बाल-बच्चे होते तो उनके साथ जरा विनोद कर लेता।' इस प्रकार उसे पुत्र के सुख की इच्छा हो उठी। फिर सोचा : 'शादी करूँ... अभी तो योग-साधना करता हूँ फिर भोग के कीचड़ में गिरूँ ? फिर बच्चे भी कैसे हों, क्या पता ? क्यों न कृष्ण-परमात्मा को ही अपना बेटा बना लूँ ?'

मैं जब बचपन में ध्यान करता था तो मेरी माँ चाँदी की कटोरी में मक्खन-मिश्री रख देती थीं और मुझे एहसास करातीं कि यह ठाकुरजी ने दिया है। ऐसा करते-करते श्रद्धा पक्की हो गई, प्रीति हो गई उस प्यारे से।

उसने मन-ही-मन कृष्ण-कन्हैया को अपना बेटा मान लिया। उनके बालस्वरूप को बेटे की तरह प्रेम करने लगा। वह हर रोज बालकृष्ण की मूर्ति को निहारता, सुबह उठकर स्नान कराता और प्रेम से उन्हें भोग लगाता। कभी-कभी कंधे पर बिठाकर कुटिया में घुमाता। सारा दिन 'कृष्ण मेरा लाड़ला है' इसी भाव में डूबा रहता। ऐसा करते-करते

समय गुजरने लगा। श्रीकृष्ण में उस योग-साधक की सुदृढ़ प्रीति हो गई और अब वह बूढ़ा हो चला।

एक दिन आसपास के लोगों ने देखा कि कुटियावाले बाबाजी गुजर गये हैं। लोगों को उनके ऊपर दया आयी कि इनका कोई नहीं है तो चलो, हम सब मिलकर इनका क्रिया-कर्म आदि निबटा लें।

लोगों ने मिलकर अर्थी आदि की व्यवस्था की और जैसे ही कंधा देने की तैयारी की, उसी वक्त एक लड़का आया और बोला :

''आप सब लोग जरा बाजू में हट जाइए।''

सबने कहा : ''अरे ! तुम कौन हो ? कहाँ से आये हो ?''

लड़का : ''ये मेरे पिता हैं। मैं इनका क्रिया-कर्म करूँगा।''

उस वक्त सबके चित्त को ऐसी वैष्णवी माया ने घेर लिया कि किसीने सोचा तक नहीं कि योगी तो बाल-ब्रह्मचारी थे, फिर यह उनका लड़का कैसे हो सकता है ? आज तक तो दिखा नहीं और अभी कहाँ से टपक पड़ा ? किसीको पूछने तक की न सूझी।

माया का प्रभाव ही ऐसा होता है कि आदमी का चित्त दिग्मूढ़-सा हो जाता है। जब किसीको कोई आघात लगता है अथवा कोई आश्चर्य या अति आनंद की बात होती है, तब भी ऐसा होता है। कोई देवी-देवता प्रसन्न हो जाते हैं तब उनसे कुछ पूछना है, ऐसा सोच-विचार नहीं रहता। फिर थोड़ा स्वस्थचित्त होकर देखता है कि : 'अरे ! ये तो अदृश्य हो गये... !'

किसी-किसी साधक को अदृश्य योगी भी मिलते हैं। उनसे मिलते या बात करते वक्त साधक उन्हें नहीं समझ पाता। फिर बाद में पता चलता है कि ये तो अदृश्य योगी थे !

वह लड़का आया और बोला : ''क्रिया-कर्म मैं करूँगा।''

उसने क्रिया-कर्म किया। साथियों को साथ लेकर कंधा दिया और अग्निसंस्कार किया। फिर बाल भी उतरवाये। जब लोग नहाने गये तब वह लड़का अदृश्य हो गया। फिर लोगों ने देखा कि :

'अरे ! वह लड़का कहाँ गया ?'

परमात्मा के लिए कुछ भी असंभव नहीं है। उस योगी का दृढ़ भाव था कि 'कृष्ण मेरा लाड़ला बेटा है' अतः उसके भाव के अनुसार घटना घटी। वह परमात्मा बेटे के रूप में आ गया। उसको कहाँ देर लगती है ? हर जगह उसकी ही चेतना व्याप्त है। माई में भी वही है और भाई में भी वही है। गुरु में भी वही है और शिष्य में भी वही है। अरे ! भूतड़ा बनकर भी वही बैठा है। जैसे-जैसे तुम्हारे भाव होते हैं वैसे-वैसे ही कर्म उसके द्वारा होते रहते हैं।

मैं जब बचपन में ध्यान करता था तो मेरी माँ चाँदी की कटोरी में मक्खन-मिश्री रख देती थीं और मुझे एहसास करातीं कि यह ठाकुरजी ने दिया है। ऐसा करते-करते श्रद्धा पक्की हो गई, प्रीति हो गई उस प्यारे से।

माँ रखे चाहे पिता रखें, चाहे न भी रखें किन्तु जो व्यक्ति ध्यान करता है, एकाग्र होता है उसके मन में यदि कोई इच्छा होती है तो उस इच्छा के आंदोलन वातावरण में फैलते हैं और

अपना प्रेम-भरा हृदय जब उसे समर्पित करता है तो उसी वक्त प्रेमास्पद का आनंद हृदय में प्रगट होता है। उस परमात्मा तक पहुँचना है तो कोई पैरों से चलकर थोड़े ही जाना है ! उसको प्रेम करते रहो, रिझाते रहो तो वासनाओं, कल्पनाओं एवं अपनी पुरानी मान्यताओं के आवरण दूर होते ही हृदय में आत्मानंद छलकेगा।

वह घटना घट जाती है।

यह असंभव नहीं है। इच्छा में तीव्रता होनी चाहिए और इच्छा एकाकार होनी चाहिए। ऐसा नहीं कि इच्छा को एक जगह से हटाकर दूसरी जगह लगाते रहा जाय। कभी रामजी को पुकारा तो कभी श्रीकृष्ण को पुकारा, कभी सिपाही का सहारा लिया तो कभी सेठजी को याद किया कि 'अपनी इच्छा पूरी हो जाये...' नहीं। इस तरह काम नहीं बन सकता।

एक ब्राह्मण तप करने बैठा था। उसके तप से प्रभावित होकर इन्द्र उसके सम्मुख आ गये और बोले : ''वर माँगो।''

ब्राह्मण बोला : ''महाराज ! मैंने आपको कहाँ बुलाया है ? मैं जो चाहूँगा, शिवजी से ही चाहूँगा। मेरे शिवजी मुझे कीट-पतंग भी बना दें तो कोई हरकत नहीं, किन्तु आपका इन्द्रपद भी मुझे नहीं चाहिए।''

ऐसा जो दृढ़निश्चयी भक्त होता है, उसकी इच्छाएँ तो सहज में पूरी हो जाती हैं। अगर सच्चे हृदय से, प्रीतिपूर्वक कोई उन्हींको ही पाना चाहे तो नहीं पाएगा क्या ?

नरसिंह मेहता ने भी कहा है :

प्रीत करूँ प्रेमथी प्रगट थाशे...

अर्थात् मैं प्रभु से प्रीति करूँगा तो वे प्रेम से प्रगट होंगे ही।

सेवाधारियों एवं सदस्यों के लिए विशेष सूचना

(१) कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नगद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी। अतः अपनी राशि मनीआर्डर या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजने की कृपा करें।

(२) 'ऋषि प्रसाद' के नये सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आपकी सदस्यता की शुरूआत पत्रिका की उपलब्धता के अनुसार कार्यालय द्वारा निर्धारित की जाएगी।

ब्रह्मज्ञानी की गत ब्रह्मज्ञानी जाने

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

परमात्मा सदा से है, सर्वत्र है। उसके सिवाय अन्य कुछ है ही नहीं। इस बात को जो समझ लेता है, जान लेता है वह परमात्मरूप हो जाता है। सूर्य के उदित होते ही संपूर्ण जीव-सृष्टि अपने-अपने गुण-स्वभाव के अनुसार अपने-अपने कार्य में संलग्न हो जाती है। सूर्य को कुछ नहीं करना पड़ता है। जैसे सूर्य अपनी महिमा में स्थित रहकर चमकता रहता है, ऐसे ही परमात्म-प्राप्त महापुरुष का जीवन आत्मसूर्य के प्रकाश में प्रारब्ध वेग से व्यतीत होता रहता है।

जिनका अंतःकरण एकाग्र होता है, उनके जीवन में चमत्कारिक घटनाएँ घट सकती हैं। लेकिन चमत्कार के बिना भी ज्ञान हो सकता है।

अजमेर में ऐसे ही एक संत बूलचंद सोनी हो गये जिन्होंने अपना जीवन आत्मसूर्य के प्रकाश में बिताया। पूर्व के पुण्य-प्रभाव से उनकी बुद्धि में विवेक का उदय हुआ। उन्होंने सोचा : 'जिन्दगी भर संसार की खटपट करते रहने में कोई सार नहीं है। आयुष्य ऐसे ही बीता जा रहा है। ऐसा करते-करते एक दिन मौत आ जाएगी। अतः अपने कल्याण के लिए भी कुछ उपाय करने चाहिए।'

ऐसा सोचकर वे कोई ऐसा संग ढूँढ़ने में लग

गये जो उन्हें ईश्वर के रास्ते ले चले, उसमें सहयोगी हो सके। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते उन्हें कुछ पण्डित मिल गये। वे कुछ समय तक उन लोगों के साथ रहे और उनके कथनानुसार सब कुछ करते रहे, परन्तु थोड़े ही दिनों में वे ऊब गये। उन्हें लगा कि चित्त में आनंद नहीं उभर रहा है, भीतर की शांति नहीं मिल रही है। अतः पंडितों का साथ छोड़कर वे पुनः किसी सत्पुरुष की खोज में चल पड़े।

''बूलचंद का अंतःकरण एकाग्र नहीं है, इसलिए उसका संकल्प नहीं फलता है। लेकिन बूलचंद एवं ब्रह्माजी दोनों के अंतःकरण को चेतना देनेवाला चैतन्य आत्मा एक है और मैं वही हूँ।''

मिल जाये कोई पीर फकीर, पहुँचा दे भव पार।

खोजते-खोजते वे पहुँच गये एक तत्त्वज्ञानी महापुरुष के श्रीचरणों में।

गीता में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं :

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥

'उस ज्ञान को तू तत्त्वदर्शी ज्ञानियों के पास जाकर समझ, उनको भली-भाँति दण्डवत् प्रणाम करने से, उनकी सेवा करने से और कपट छोड़कर सरलतापूर्वक प्रश्न करने से वे परमात्मतत्त्व को भली-भाँति जाननेवाले ज्ञानी महात्मा तुझे उस तत्त्वज्ञान का उपदेश करेंगे।' (श्रीमद्भगवद्गीता : ४.३४)

बूलचंद सोनी विनम्रतापूर्वक उन महापुरुष की शरण में रहे। उनके आदेशानुसार जप-ध्यानादि करते हुए धीरे-धीरे वे भी ब्रह्मज्ञान पाने के अधिकारी हो गये और उन संत की करुणा-कृपा से आत्म-परमात्मज्ञान में उनकी स्थिति हुई।

अब उन्हें कर्मकांड आदि की बातें व्यर्थ लगने लगीं। उनमें उनकी दिलचस्पी ही नहीं रही। पंडितों की बातों से उनका मेल नहीं बैठता था क्योंकि उन्होंने अब जान लिया था कि कर्मकांड क्या है और सत्यस्वरूप आत्मा का ज्ञान क्या है।

''आप भगवान को सब कुछ समझ रहे हो, इसलिए कहता हूँ कि 'मैं भगवान हूँ' अन्यथा तो भगवान की सत्ता जिससे है और सब देवी-देवता जिसकी सत्ता से प्रगट होते हैं वह चैतन्य ब्रह्म मैं हूँ। इस बात को मैं मानता हूँ और जानता भी हूँ।''

उन पंडितों ने देखा कि अब ये हमारे पास नहीं आते हैं, अतः वे उन्हें समझाने लगे कि :

''भाई ! तुम अब यहाँ क्यों नहीं आते हो ? यज्ञादि में भाग क्यों नहीं लेते हो ?''

उन्होंने कहा : ''प्रार्थना से भगवान प्रसन्न होते हैं, यज्ञ से भगवान प्रगट होते हैं, यह सब ठीक तो है लेकिन यह सब तभी तक ठीक था जब तक मैंने अपने भगवद्स्वरूप को नहीं जाना था। अब मैंने जान लिया है कि मैं भी भगवद्स्वरूप हूँ तो क्यों गिड़गिड़ाऊँ ?''

उनकी ऐसी बातें सुनकर वे लोग चिढ़ गये :

''तुम क्या बकते हो ? क्या तुम भगवान हो ? अपने को भगवान मानते हो ?''

बूलचंद सोनी : ''यह तो आप भगवान को सब कुछ समझ रहे हो, इसलिए कहता हूँ कि 'मैं भगवान हूँ' अन्यथा तो भगवान की सत्ता जिससे है और सब देवी-देवता जिसकी सत्ता से प्रगट होते हैं वह चैतन्य ब्रह्म मैं हूँ। इस बात को मैं मानता हूँ और जानता भी हूँ।''

पंडित : ''अच्छा... तो तुम भगवान को नहीं मानते हो ?''

फिर सब पंडित आपस में कहने लगे : ''यह तो नास्तिक हो गया है।''

शेर अकेला होता है, भीड़ भेड़ियों की होती है। सब पंडितों ने मिलकर घेर लिया बूलचंद सोनी को और कहने लगे :

''तुम ब्रह्म हो- यह बात हम तब मानेंगे, जब तुम कोई

करिश्मा दिखाओगे।''

साधारण लोग यह बना-बनाया जगत देखते हैं तो समझते हैं कि भगवान ने बनाया है, परन्तु ऐसी बात नहीं है। ब्रह्म में जगत विवर्तरूप होकर भासता है, भ्रांतिरूप होकर भासता है। इसे किसीने बैठकर बनाया नहीं है। यदि जगत ऐसे बना है जैसे कुम्हार मिट्टी से घड़ा बनाता है तो जिन पाँच महाभूतों से जगत बना है वह मिट्टी, हवा, जल आदि बनाने का कच्चा माल भी तो चाहिए ! वह कच्चा माल भगवान लाये कहाँ से ?

जैसे सूर्य अपनी महिमा में स्थित रहकर चमकता रहता है, ऐसे ही परमात्म-प्राप्त महापुरुष का जीवन आत्मसूर्य के प्रकाश में प्रारब्ध-वेग से व्यतीत होता रहता है।

ऐसा तो नहीं है कि भगवान ने कुछ कच्चा माल लाकर पृथ्वी, जल, वायु आदि बनाकर चिड़िया आदि जीवों को रख दिया है कि जाओ खेलो। परन्तु लोग ऐसा समझ रहे हैं कि भगवान ने दुनियाँ बनायी और वह खेल देख रहा है। मंद मति के लोगों को असली बात का पता ही नहीं है। भेड़ों की भीड़ की तरह वे चल रहे हैं। इसलिए भगवान को वे मानते हैं, भगवान में श्रद्धा रखते हैं। लेकिन उनमें से कोई विरला होता है जो अपने-आपको भगवद्स्वरूप जान लेता है, बाकी तो सब ठनठनपाल रह जाते हैं।

पंडितों की करिश्मा दिखाने की बात सुनकर बूलचंद हँस पड़े।

''भाई ! क्यों हँसते हो ?''

''अरे ! तुम मुझे करिश्मा दिखाने के लिए कहते हो ? तुम कितने भोलेभाले हो ! तुम मैनेजर का काम सेठ को सौंपते हो। सृष्टि बनाने का संकल्प ब्रह्माजी करते हैं। बूलचंद का शरीर तो ब्रह्माजी का दास है किन्तु मैं बूलचंद नहीं हूँ। मैं तो वह हूँ जिससे चेतना लेकर ब्रह्माजी संकल्प करते हैं। ब्रह्माजी का चित्त एकाग्र है, इसलिए उनका संकल्प फलता है। बूलचंद का अंतःकरण एकाग्र नहीं है, इसलिए उसका संकल्प नहीं फलता है। लेकिन बूलचंद एवं ब्रह्माजी दोनों के अंतःकरण को चेतना देनेवाला चैतन्य आत्मा एक है और मैं वही हूँ।''

वे पंडित तो मूढ़वत् उनकी बातें सुनते रहे। उनको ये बातें जँची नहीं और वे सब वहाँ से उठकर चल दिये।

यह जरूरी नहीं है कि आपको आत्म-साक्षात्कार हो जाये तो आप भी कुछ चमत्कार कर सको। करना-धरना अंतःकरण में है और वह एकाग्रता से होता है। ब्रह्म में कुछ नहीं है। ब्रह्म कुछ नहीं करता है। ब्रह्म तो सत्तामात्र है। सारी क्रियाएँ, सारी सत्ताएँ उसीसे स्फुरित होती हैं। जिनका अंतःकरण एकाग्र होता है, उनके जीवन में चमत्कारिक घटनाएँ घट सकती हैं। लेकिन चमत्कार के बिना भी ज्ञान हो सकता है।

वेदव्यासजी और वशिष्ठजी के जीवन में चमत्कार भी है और ज्ञान भी है। साँईं श्री लीलाशाहजी महाराज के जीवन में भी चमत्कार और ज्ञान दोनों हैं। किसीके पास अकेला ज्ञान है, तब भी वह मुक्त ही है। योग-सामर्थ्य हो चाहे न हो किन्तु मुक्ति पाने के लिए तत्त्वज्ञान हो- यह बहुत जरूरी है। ज्ञान से ही मुक्ति होती है। ऐसा ज्ञान पाया हुआ आदमी सब प्रकार के शोकों से तर जाता है। उसका मन निर्लेप हो जाता है। शोक के प्रसंग में शोक बाधित होता है एवं राग के प्रसंग में राग बाधित होता है। काम और क्रोध के प्रसंग में काम और क्रोध बाधित होते हैं। नानकजी ने भी कहा है :

ब्रह्मज्ञानी सदा निर्लेपा,
जैसे जल में कमल अलेपा।
ब्रह्मज्ञानी की मत कौन बखाने,
नानक ब्रह्मज्ञानी की गत ब्रह्मज्ञानी जाने ॥

*

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

भगवान स्वयं अवतार क्यों लेते हैं ?

एक बार अकबर ने बीरबल से पूछा : ''तुम्हारे भगवान और हमारे खुदा में बहुत फर्क है। हमारा खुदा तो अपना पैगम्बर भेज देता है जबकि तुम्हारा भगवान बार-बार आता है। यह क्या है ?''

बीरबल : ''जहाँपनाह ! इस बात का कभी व्यावहारिक तौर पर अनुभव करवा दूँगा। आप जरा थोड़े दिनों की मोहलत दीजिए।''

चार-पाँच दिन बीत गये। बीरबल ने एक आयोजन किया। अकबर को यमुनाजी में नौकाविहार कराने ले गये। कुछ नावों की व्यवस्था पहले से ही करवा दी थी। उस समय यमुनाजी छिछली न थीं। उनमें अथाह जल था। बीरबल ने एक युक्ति की कि जिस नाव में अकबर बैठा था, उसी नाव में एक दासी को अकबर के नवजात शिशु के साथ बैठा दिया गया। सचमुच में वह नवजात शिशु नहीं था। मोम का बालक (पुतला) बनाकर उसे राजसी वस्त्र पहनाये गये थे ताकि वह अकबर का बेटा लगे। दासी को सब कुछ सिखा दिया गया था।

नाव जब बीच मझधार में पहुँची और हिलने लगी .तब 'अरे...रे...रे... ओ...ओ...' कहकर दासी ने स्त्री-चरित्र करके बच्चे को पानी में गिरा दिया और रोने-बिलखने लगी। अपने बालक को बचाने-खोजने के लिए अकबर धड़ाम से यमुना में कूद पड़ा। खूब इधर-उधर गोते मारकर , बड़ी मुश्किल से उसने बच्चे को पानी में से निकाला। वह बच्चा तो क्या था, मोम का पुतला था !

अकबर कहने लगा : ''बीरबल ! यह सारी शरारत तुम्हारी है। तुमने मेरी बेइज्जती करवाने के लिए ही ऐसा किया।''

बीरबल : ''जहाँपनाह ! आपकी बेइज्जती के लिए नहीं, बल्कि आपके प्रश्न का उत्तर देने के लिए ऐसा किया गया था। आप इसे अपना शिशु समझकर नदी में कूद पड़े। उस समय आपको पता तो था ही कि इन सब नावों में कई तैराक बैठे थे, नाविक भी बैठे थे और हम भी तो थे ! आपने हमको आदेश क्यों नहीं दिया ? हम कूदकर आपके बेटे की रक्षा करते !''

अकबर : ''बीरबल ! यदि अपना बेटा डूबता हो तो अपने मंत्रियों को या तैराकों को कहने की फुरसत कहाँ रहती है ? खुद ही कूदा जाता है।''

बीरबल : ''जैसे अपने बेटे की रक्षा के लिए आप खुद कूद पड़े, ऐसे ही हमारे भगवान जब अपने बालकों को संसार में एवं संसार की मुसीबतों में डूबता हुआ देखते हैं तो वे पैगम्बर-वैगम्बर को नहीं भेजते, वरन् खुद ही प्रगट होते

''जैसे अपने बेटे की रक्षा के लिए आप खुद कूद पड़े, ऐसे ही हमारे भगवान जब अपने बालकों को संसार में एवं संसार की मुसीबतों में डूबता हुआ देखते हैं तो वे पैगम्बर-वैगम्बर को नहीं भेजते, वरन् खुद ही प्रगट होते हैं। वे अपने बेटों की रक्षा के लिए आप ही अवतार ग्रहण करते हैं और संसार को आनंद तथा प्रेम के प्रसाद से धन्य करते हैं।''

हैं । वे अपने बेटों की रक्षा के लिए आप ही अवतार ग्रहण करते हैं और संसार को आनंद तथा प्रेम के प्रसाद से धन्य करते हैं । आपके उस दिन के सवाल का यही जवाब है, जहाँपनाह !''

अकबर : ''बीरबल ! तुम धन्य हो !''

*

संतों की अवहेलना का दुष्परिणाम

आत्मानंद की मस्ती में रमण करनेवाले किन्हीं महात्मा को देखकर एक सेठ को हुआ :

'ब्रह्मज्ञानी की सेवा बड़े भाग्य से मिलती है। चलो, अपने द्वारा भी कुछ सेवा हो जाये ।'

यह सोचकर उन्होंने अपने नौकर को आदेश दे दिया : ''रोज शाम को महात्माजी को दूध पिलाकर आया करो।''

नौकर क्या करता कि दूध के पैसे तो जेब में डाल देता और छाछ मिल जाती थी मुफ्त में तो नमक-मिर्ची मिलाकर छाछ का प्याला बाबाजी को पिला आता।

एक बार सेठ घूमते-घामते महात्माजी के पास गये और उनसे पूछा :

''बाबाजी ! हमारा नौकर आपको रोज शाम को दूध पिला जाता है न ?''

बाबाजी : ''हाँ, पिला जाता है।''

बाबाजी ने विश्लेषण नहीं किया कि क्या पिला जाता है। नौकर के व्यवहार से महात्माजी को तो कोई कष्ट नहीं हुआ, किन्तु प्रकृति से संत की अवहेलना सहन नहीं हुई। समय पाकर उस नौकर को कोढ़ हो गया, समाज से इज्जत-आबरू चली गयी। तब किसी समझदार व्यक्ति ने पूछा :

''भाई ! बात क्या है ? चारों ओर से तू परेशानी से घिर गया है !''

उस नौकर ने कहा :

''मैंने और कोई पाप तो नहीं किया किन्तु सेठ ने मुझे हररोज एक महात्मा को दूध पिलाने के लिए कहा था। किन्तु मैं दूध के पैसे जेब में रखकर उन्हें छाछ पिला देता था, इसीलिए यह दुष्परिणाम भोगना पड़ रहा है।''

संत-महापुरुष तो अपनी अवहेलना पर ध्यान नहीं देते किन्तु प्रकृति कभी-भी संत की अवहेलना सहन नहीं करती। देर-सबेर दुष्परिणाम सामने आता ही है। अतः मनुष्य को चाहिए कि संतों के संग एवं उपदेश से अपने जीवन को कृतार्थ करे, न कि अवहेलना करके अपने जीवन में विपत्तियों को आमंत्रण दे ।

नौकर के व्यवहार से महात्माजी को तो कोई कष्ट नहीं हुआ, किन्तु प्रकृति से संत की अवहेलना सहन नहीं हुई। समय पाकर उस नौकर को कोढ़ हो गया, समाज से इज्जत-आबरू चली गयी। मनुष्य को चाहिए कि संतों के संग एवं उपदेश से अपने जीवन को कृतार्थ करे, न कि अवहेलना करके अपने जीवन में विपत्तियों को आमंत्रण दे।

*

'मैंने चौका साफ रखा है...'

गंगा किनारे हरिदास नाम के एक प्रसिद्ध संत हो चुके हैं। वे बड़ी मस्ती से जीवन-यापन किया करते थे।

एक बार एक सिंधी सेठ ने कुछ सोने की गिन्नियाँ एक थैली में ले जाकर उन महात्मा के आगे रखीं। गिन्नियाँ देखकर हरिदासजी बोले :

''इसको हटाओ यहाँ से।''

सेठ : ''महात्माजी ! कृपया इसको स्वीकार कीजिए।''

महात्मा ने डाँट दिया और कहा :

''देखो, सेठ ! मैं ठहरा विरक्त महात्मा। मठ, मंदिर या समिति तो है नहीं कि वह

यह धन सँभाले । मान लो, तुम्हारे घर में बेटी की शादी हो, तुमने अपना रसोईघर साफ-सुथरा किया हो, चौका लीपा-पोता हो और अपनी बेटी दूल्हे को सौंपते वक्त उसके मुँह में तुम जो प्रसाद डालनेवाले हो, वह प्रसाद जहाँ बननेवाला है उस चौके में यदि कोई विष्ठा कर दे तो तुम क्या करोगे ?''

सेठ : ''क्या करूँगा ? उसको तो मैं मार-पीटकर सीधा कर दूँगा।''

महात्मा : ''ऐसे ही मैंने हृदयरूपी चौके को साफ कर रखा है । उसमें वृत्तिरूपी बेटी को परमात्मारूपी दूल्हे के हाथ में देने का मैं इंतजार कर रहा हूँ। अब न जाने कौन-सी घड़ी आ जाये कि इनका हस्तमिलाप हो जाये ! ...और तुम इस चौके में गिन्नियाँरूपी विष्ठा ले आये हो... अब बोलो, मैं तुम्हारे साथ कैसा व्यवहार करूँ ? डाँटूँ, मारूँ कि भगाऊँ ? तुम ही बता दो।''

सेठ अपनी गलती को समझ गया। अतः क्षमा माँगते हुए उसने अपनी थैली वापस ले ली।

*

देश-विदेशों में टी. वी. चैनलों पर पू. बापू के सत्संग-कार्यक्रम

SONY टी. वी. चैनल पर 'ऋषि प्रसाद' सत्संग-कार्यक्रम सुबह ७-३०. लंदन के समयानुसार सुबह ७-३० यूरोप एवं अफ्रीका में। न्यूयॉर्क के समयानुसार सुबह ७-३० अमेरिका एवं केनेडा में । तदुपरांत, अमेरिका में T. V. Asia चैनल पर इस्टर्न टाईम के मुताबिक सोमवार, बुधवार, शनिवार को सुबह ९ बजे तथा Asian-American Broadcasting Company पर इस्टर्न टाईम के मुताबिक हररोज सुबह ६ बजे एवं सुबह १० बजे । भारत के भाई-बहन विदेशों में रहनेवाले अपने सगे-संबंधियों, परिचितों-मित्रों को खबर कर सकते हैं।

ऋषिविज्ञान की रहस्यमय खोज

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

सृष्टि के अधिष्ठाता सच्चिदानंद परमात्मा की सोलह कलाएँ हैं। जगत के जड़-चेतन पदार्थों तथा मानवेतर प्राणियों में उनमें से अलग-अलग कलाएँ निश्चित संख्या में विकसित होती हैं परन्तु मनुष्य में ईश्वर की संपूर्ण कलाओं को विकसित करने का सामर्थ्य होता है ।

श्रीकृष्ण में समस्त सोलह कलाएँ पूर्ण रूप से विकसित थीं। श्रीरामचन्द्रजी में बारह कलाओं का विकास हुआ था । इसी प्रकार अनेक ऋषि-मुनियों में भिन्न-भिन्न संख्याओं में ईश्वरीय कलाओं का विकास हुआ था ।

पत्थर तथा उसके जैसे अन्य जड़ पदार्थों में परमात्मा की एक ही अस्तित्वकला का विकास होता है। उसे तोड़ डालो तो उसके टुकड़े बन जाएँगे। पीस डालो तो चूर्ण हो जाएगा और उसे फूँक मारकर उड़ा दो तो वातावरण में ओझल हो जाएगा परन्तु फिर भी वह कहीं-न-कहीं रहता अवश्य है । उसका होना ही ईश्वर की अस्तित्वकला है ।

पेड़-पौधों में ईश्वर की दो कलाएँ होती हैं : पहली अस्तित्वकला तथा दूसरी ग्राह्यकला । वे पृथ्वी एवं वातावरण से अपना भोजन भी ग्रहण

कर सकते हैं।

पशु-पक्षियों में उस सत्यस्वरूप परमात्मा की चार कलाएँ विकसित होती हैं : पहली अस्तित्वकला, दूसरी ग्राह्यकला, तीसरी स्थानान्तरणकला तथा चौथी अल्प समृतिकला।

पशु-पक्षी भोजन के साथ-साथ गमनागमन भी कर सकते हैं तथा उनमें थोड़ी स्मृति (यादशक्ति) भी होती है। पक्षी अपने घोंसलों को पहचान लेते हैं। गाय का बछड़ा सैकड़ों गायों के बीच भी अपनी माँ को पहचान लेता है। कोई बछड़ा किसी दूसरी गाय का दूध पीने जाय तो वह उसे लात-सींगों से मारती है। यह ईश्वर की स्मृतिकला है परन्तु उनमें यह कला अल्पविकसित होती है।

बछड़ा जब बड़ा हो जाता है तब वह अपनी माँ को नहीं पहचानता अथवा तो कुछ महीने बछड़े को उसकी माँ से दूर रखा जाय और बाद में फिर उन्हें मिलाया जाय तो वे एक-दूसरे को नहीं पहचान पाते।

मनुष्य में पाँच कलाएँ विकसित होती हैं : अस्तित्वकला, ग्राह्यकला, स्थानान्तरणकला, स्मृतिकला तथा विचारकला।

मनुष्य में स्मृतिकला अधिक विकसित होती है। उसे अपने सम्बन्धों, जाति तथा वर्ण आदि की आजीवन स्मृति बनी रहती है।

मनुष्य की पाँचवीं कला है विचारकला जिसके द्वारा वह विचारने तथा जानने की क्षमता रखता है, नये-नये आविष्कार कर सकता है।

मनुष्य के अतिरिक्त अन्य सभी वस्तुएँ तथा जीव अपनी कुछ निश्चित कलाओं में बँधे हुए हैं। गाय आज से सौ वर्ष पहले भी चार पैरों से चलती थी और आज भी चार पैरों से ही चलती है। पत्थर की कभी भी दूसरी कला विकसित नहीं हुई।

योनि बदल जाने के बाद कलाओं का बदलना और बात है परन्तु अपने एक जीवनकाल में ये जीव तथा वस्तुएँ अपनी निश्चित कलाओं तक ही सीमित रहते हैं।

मनुष्य का यह सौभाग्य है कि वह पाँच कलाओं से लेकर दस, पन्द्रह अथवा सम्पूर्ण सोलह कलाओं को विकसित कर सकता है। वह छः भागवी कला बढ़ाकर भगवदीय सामर्थ्य प्राप्त कर सकता है।

दस कलाओं का विकास कर लेने पर मानव मुक्तात्मा हो जाता है। यदि योगाभ्यास बढ़ाकर और भी आगे बढ़े तो वह सोलह कलाओं तक की यात्रा कर सकता है। इसीलिए मनुष्य को सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी कहा जाता है।

आज के मनुष्य का यह दुर्भाग्य है कि वह अन्य जीवों की भाँति अपनी पाँच कलाओं में ही बँधकर रह जाता है। सामर्थ्य होते हुए भी आज का मानव अपने जीवन को पूर्ण विकसित नहीं कर पाता। इसका कारण है भौतिकवाद की चकाचौंध के पीछे मनुष्य का मोहित हो जाना तथा समाज में आध्यात्मिकता एवं योगविद्या का अभाव हो जाना।

हे मानव! ईश्वर ने तुझे ईश्वर-पद तक की यात्रा करने का सामर्थ्य दिया है। अतः इस सामर्थ्य का उपयोग करके अपने जीवन-पुष्प को पूर्ण विकसित करके पूर्णता को प्राप्त कर। इसीमें मानव जीवन की सार्थकता है।

*

महत्त्वपूर्ण निवेदन : सदस्यों के डाक पते में परिवर्तन अगले अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा। जो सदस्य ७९ वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया मई तक अपना नया पता भिजवा दें।

छत्रसाल की वीरता

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

बात उस समय की है, जब दिल्ली के सिंहासन पर औरंगजेब बैठ चुका था।

विंध्यवासिनी देवी के मंदिर में उनके दर्शन हेतु मेला लगा हुआ था, जहाँ लोगों की खूब भीड़ जमा थी। पन्नानरेश छत्रसाल उस वक्त १३-१४ साल के किशोर थे। छत्रसाल ने सोचा कि 'जंगल से फूल तोड़कर फिर माता के दर्शन के लिए जाऊँ।' उनके साथ हमउम्र के दूसरे राजपूत बालक भी थे। जब वे लोग जंगल में फूल तोड़ रहे थे, उसी समय छः मुसलमान सैनिक घोड़े पर सवार होकर वहाँ आये एवं उन्होंने पूछा : ''ऐ लड़के! विन्ध्यवासिनी का मंदिर कहाँ है ?''

छत्रसाल : ''भाग्यशाली हो, माता का दर्शन करने के लिए जा रहे हो। सीधे... सामने जो टीला दिख रहा है, वहीं मंदिर है।''

सैनिक : ''हम माता के दर्शन करने नहीं जा रहे, हम तो मंदिर को तोड़ने के लिए जा रहे हैं।''

छत्रसाल ने फूलों की डलिया एक दूसरे बालक को पकड़ायी और गरज उठा :

''मेरे जीवित रहते हुए तुम लोग मेरी माता का मंदिर तोड़ोगे ?''

सैनिक : ''लड़के! तू क्या कर लेगा ? तेरी छोटी-सी उम्र, छोटी-सी तलवार.... तू क्या कर सकता है ?''

छत्रसाल ने एक गहरा श्वास लिया और जैसे हाथियों के झुंड पर सिंह टूट पड़ता है, वैसे ही उन घुड़सवारों पर वह टूट पड़ा। छत्रसाल ने ऐसी वीरता दिखाई कि एक को मार गिराया, दूसरा बेहोश हो गया... लोगों को पता चले उसके पहले ही आधा दर्जन फौजियों को मार भगाया। धर्म की रक्षा के लिए अपनी जान तक की परवाह नहीं की वीर छत्रसाल ने। वही वीर बालक आगे चलकर पन्नानरेश हुआ।

भारत के ऐसे ही वीर सपूतों के लिए किसीने कहा है :

तुम अग्नि की भीषण लपट,
जलते हुए अंगार हो।
तुम चंचला की द्युति चपल,
तीखी प्रखर असिधार हो।
तुम खौलती जलनिधि-लहर,
गतिमय पवन उनचास हो ॥
तुम राष्ट्र के इतिहास हो,
तुम क्रांति की आख्यायिका
भैरव प्रलय के गान हो,
तुम इन्द्र के दुर्दम्य पवि
तुम चिर अमर बलिदान हो,
तुम कालिका के कोप हो।
पशुपति रुद्र के भ्रूलास हो,
तुम राष्ट्र के इतिहास हो ॥

दिनांक : १८ मई, १९९९ को इस वीर पुरुष की जयंती है। ऐसे वीर धर्मरक्षकों की दिव्य गाथा यही याद दिलाती है कि दुष्ट बनो नहीं और दुष्टों से डरो भी नहीं। जो आततायी व्यक्ति बहू-बेटियों की इज्जत से खेलता है या देश के लिए खतरा पैदा करता है, ऐसे बदमाशों का सामना साहस के साथ करना चाहिए। अपनी शक्ति जगानी चाहिए। यदि तुम धर्म एवं देश की रक्षा के लिए

कार्य करते हो तो ईश्वर भी तुम्हारी सहायता करता है।

'हरि ॐ... हरि ॐ... हिम्मत... साहस... ॐ...ॐ... बल... शक्ति... हरि ॐ... ॐ... ॐ...' ऐसा करके भी तुम अपनी सोयी हुई शक्ति को जगा सकते हो। अभी से लग जाओ अपनी सुषुप्त शक्ति को जगाने के कार्य में और प्रभु को पाने में।

किडनी (गुर्दा)

हम गुर्दे के बारे में बहुत ही कम जानते हैं। इसे अंग्रेजी में किडनी एवं हिन्दी में गुर्दा अथवा वृक्क कहा जाता है। जिस प्रकार नगरपालिका शहर को स्वच्छ रखती है वैसे ही किडनी शरीर को स्वच्छ रखती है। रस-रक्त में से मूत्र बनाने का महत्त्वपूर्ण कार्य किडनी करती है। शरीर में रस एवं रक्त में उपस्थित विजातीय व अनावश्यक द्रव्यों एवं कचरों को मूत्रमार्ग द्वारा शरीर से बाहर निकालने का कार्य किडनी का ही है।

किडनी वास्तव में रस-रक्त का शुद्धीकरण करनेवाली एक प्रकार की ११ से.मी. लंबी काजू के आकार की छननी है जो पेट के पृष्ठ भाग में मेरुदंड के दोनों ओर स्थित होती है। प्राकृतिक रूप से स्वस्थ किडनी में रोज ६० किलो जितना पानी छानने की क्षमता होती है। फिर भी सामान्य रूप से वह २४ घण्टे में १ से २ लिटर जितना मूत्र बनाकर शरीर को नीरोग रखती है। किसी कारणवशात् यदि वह कार्य करना बंद कर दे अथवा दुर्घटना में उसे खो देना पड़े तो उस व्यक्ति की दूसरी किडनी पूरा कार्यभार सँभालकर शरीर को विषाक्त होने से बचाकर स्वस्थ रखती है। जिस प्रकार नगरपालिका की लापरवाही अथवा आलस्य से शहर में गंदगी फैल जाती है एवं धीरे-धीरे महामारियाँ फैलने लगती हैं, वैसे ही किडनी

गुड़, मिठाई, वनस्पति घी, श्रीखंड, मांसाहार, फ्रूट जूस, इमली, टमाटर-केच अप, अचार केरी, खट्टा आदि सब किडनी-दर्द के कारण हैं।

सामान्य लक्षण

आधुनिक विज्ञान के अनुसार किडनी खराब होने पर निम्नांकित लक्षण दिखाई देते हैं :

१. आँख के नीचे की पलकें फूली हुईं, पानी से भरी एवं भारी दिखती हैं।

२. जीवन में चेतनता, स्फूर्ति तथा उत्साह कम हो जाता है।

३. सुबह बिस्तर से उठते वक्त स्फूर्ति के बदले उबान, आलस्य एवं बेचैनी रहती है।

४. थोडे श्रम से ही थकान लगने लगती है।

५. श्वास लेने में कभी-कभी तकलीफ होने लगती है।

६. कमजोरी महसूस होती है।

७. भूख कम होती जाती है।

८. सिर दुखने लगता है अथवा चक्कर आने लगते हैं।

९. कइयों का वजन घट जाता है।

१०. कइयों को पैरों अथवा शरीर के दूसरे भागों पर सूजन आ जाती है, कभी जलोदर हो जाता है तो कभी उलटी-उबकाई जैसा लगता है।

११. रक्तचाप उच्च हो जाता है।

१२. पेशाब में एल्ब्यूमिन दिखता है।

आयुर्वेदानुसार किडनी-रोग के सामान्य लक्षण

सामान्य रूप से शरीर के किसी अंग में अचानक सूजन होना, सर्वांग वेदना, बुखार, सिरदर्द, वमन, रक्ताल्पता, पाण्डुता, मंदाग्नि, पसीने का अभाव, त्वचा का रूखापन, नाड़ी का तीव्र गति से चलना, रक्त का उच्च दबाव, पेट में किडनी के स्थान को दबाने पर पीड़ा होना, प्रायः बूँद-बूँद करके अल्प मात्रा में जलन व पीड़ा के साथ गर्म पेशाब आना, हाथ-पैर ठंडे रहना, अनिद्रा, यकृत-प्लीहा के दर्द, कर्णनाद, आँखों में विकृति आना, कभी मूर्च्छा और कभी उलटी होना, अम्लपित्त, ध्वजभंग (नपुंसकता), सिर तथा गर्दन में पीड़ा, भूख नष्ट होना, खूब प्यास लगना, कब्जियत होना- जैसे लक्षण होते हैं। ये सभी लक्षण सभी मरीजों में विद्यमान हों, यह जरूरी नहीं है।

किडनी-रोग से होनेवाले अन्य उपद्रव

किडनी का दर्द ज्यादा समय तक रहे तो उसके कारण मरीज को श्वास, हृदयकंप, न्यूमोनिया, प्लुरसी, जलोदर, खांसी, हृदयरोग, यकृत एवं प्लीहा के दर्द, मूर्च्छा एवं अंत में मृत्यु तक हो सकती है। ऐसे मरीजों में ये उपद्रव विशेषकर रात्रि के समय बढ़ जाते हैं।

※ **उपचार** : आज की एलोपैथी में किडनी-रोग का सरल व सुलभ उपचार उपलब्ध नहीं है जबकि आयुर्वेद के पास इसका सचोट, सरल व सुलभ इलाज है।

※ **आहार** : प्रारंभ में रोगी को ३-४ दिन का उपवास करायें अथवा मूँग या जौ के पानी पर रखकर लघु आहार करायें। आहार में नमक बिल्कुल न दें या कम दें। नींबू के शर्बत में शहद या ग्लुकोज डालकर १५ दिन तक दिया जा सकता है। चावल की पतली घेंस या राब दी जा सकती है। फिर जैसे-जैसे यूरिया की मात्रा क्रमशः घटती जाये वैसे-वैसे दलिया, रोटी, सब्जी आदि दिया जा सकता है। मरीज को चने का पानी, सहजने का सूप, धमासा या गोखरन का पानी चाहे जितना दे सकते हैं। किन्तु जब फेफड़ों में पानी का संचय होने लगे तो उसे ज्यादा पानी न दें, पानी की मात्रा घटा दें।

रोगी को दारू, मांस, मछली, अण्डे, काफी, हींग, मिर्ची, अचार, पापड़, फल, पेड़े, मिठाई, पनीर, नमकीन, सेम, मटर, चौरा, बेकरी एवं फ्रिज की चीजें बिल्कुल न देवें।

के खराब होने पर शरीर अस्वस्थ हो जाता है।

अपने शरीर में किडनी एक चतुर यंत्रविद् (Technician) की भाँति कार्य करती है। किडनी शरीर का अनिवार्य एवं क्रियाशील भाग है, जो अपने तन एवं मन के स्वास्थ्य पर नियंत्रण रखती है। उसके बिगड़ने का असर रक्त, हृदय, त्वचा एवं यकृत पर पड़ता है। वह रस एवं रक्त में स्थित शर्करा (Sugar), रक्तकण एवं उपयोगी आहार-द्रव्यों को छोड़कर केवल अनावश्यक पानी एवं द्रव्यों को मूत्र के रूप में बाहर फेंकती है। यदि रस-रक्त में शर्करा का प्रमाण बढ़ गया हो तो किडनी मात्र बढ़ी हुई शर्करा के तत्त्व को छानकर मूत्र में भेज देती है।

किडनी का विशेष संबंध हृदय, फेफड़ों, यकृत एवं प्लीहा (तिल्ली) के साथ होता है। ज्यादातर हृदय एवं किडनी परस्पर सहयोग के साथ कार्य करते हैं। इसलिए जब किसीको हृदयरोग होता है तो उसकी किडनी भी बिगड़ती है और जब किडनी बिगड़ती है तब उस व्यक्ति का रक्तचाप उच्च हो जाता है और धीरे-धीरे हृदय भी दुर्बल हो जाता है।

आयुर्वेद के निष्णात वैद्य कहते हैं कि किडनी के रोगियों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। इसका मुख्य कारण आज कल के समाज में हृदयरोग, दमा, श्वास, टी.बी., डायबिटिज, उच्च रक्तचाप (High B.P.) जैसे रोगों में किया जा रहा आधुनिक दवाओं का आजीवन सेवन है।

इन आधुनिक दवाओं के जहरी प्रभाव के कारण ही किडनी एवं मूत्र-संबंधी रोग उत्पन्न होते हैं। कभी-कभी किसी आधुनिक दवा के अल्पकालीन सेवन की विनाशकारी प्रतिक्रिया (Reaction) के रूप में भी 'किडनी फेल' (Kidney Fail) जैसे गंभीर रोग होते हुए दिखाई देते हैं। अतः मरीजों को हमारी सलाह है कि उनकी कोई भी बीमारी में, जहाँ तक हो सके वहाँ तक वे निर्दोष वनस्पतियों से निर्मित एवं विपरीत तथा परवर्ती असर (Side Effect and After Effect) से रहित आयुर्वेदिक दवाओं के सेवन का ही आग्रह रखें। आपको यह जानकर अब तो आश्चर्य नहीं होगा कि आधुनिक एलोपैथी के डॉक्टर स्वयं भी अपने अथवा अपने संबंधियों के इलाज के लिए आयुर्वेदिक दवाओं का ही आग्रह रखते हैं।

आधुनिक विज्ञान कहता है कि किडनी अस्थि-मज्जा (Bone-Marrow) बनाने का कार्य भी करती है। इससे भी यह सिद्ध होता है कि आज की रक्तकैंसर की व्यापकता का कारण भी आधुनिक दवाओं का विपरीत एवं परवर्ती प्रभाव ही है।

किडनी-दर्द के कारण

आधुनिक समय में मटर, सेम आदि द्विदलों जैसे प्रोटीनयुक्त आहार का अतिरेक, मैदा, शक्कर एवं बेकरी की चीजों का अधिक प्रयोग, चाय-काफी जैसे उत्तेजक पेय, दारू एवं ठंडे पेय, आधुनिक जहरीली दवाइयाँ जैसे- ब्रुफेन, मेगाडोल, आईब्युजेसीक, वोवेरीन जैसी एनालजेसिक दवाएँ, एन्टीबायोटिक्स, सल्फा ड्रग्स, एस्पीरीन, फेनासेटीन, केफीन, ए. पी. सी., एनासीन वगैरह का ज्यादा उपयोग, आहार का जहर अथवा मादक पदार्थों का ज्यादा सेवन, सूजाक (गोनोरिया), उपदंश (सिफलिस) जैसे लैंगिक रोग त्वचा की अस्वच्छता या उसके रोग, जीवनशक्ति एवं रोगप्रतिकारक-शक्ति का अभाव, आँतों में संचित मल, शारीरिक परिश्रम का अभाव, अत्यधिक शारीरिक या मानसिक श्रम, अशुद्ध दवा एवं अयोग्य जीवन, उच्च रक्तचाप तथा हृदयरोगों में लंबे समय तक किया जानेवाला दवाओं का सेवन, आयुर्वेदिक परंतु अशुद्ध पारे से बनी दवाओं का सेवन, आधुनिक मूत्रल (Diuretic) औषधियों का सेवन, तम्बाकू या ड्रग्स के सेवन की आदत, दही, तिल, नया

✲ **विहार** : किडनी के मरीज को आराम जरूर करायें। सूजन ज्यादा हो अथवा यूरेमिया या मूत्रविष के लक्षण दिखें तो मरीज को पूर्ण शय्या आराम (Complete bed rest) करायें। मरीज को थोड़े गरम एवं सूखे वातावरण में रखें। हो सके तो पंखे की हवा न खिलायें। तीव्र दर्द में गरम कपड़े पहनायें। गर्म पानी से ही स्नान करायें। थोड़ा गुनगुना पानी पिलायें।

✲ **औषध-उपचार** : किडनी के रोगी के लिए कफ एवं वायु का नाश करनेवाली चिकित्सा लाभप्रद है। जैसे कि स्वेदन, वाष्पस्नान (Steem-bath), गर्म पानी से कटिस्नान (Tub-bath)।

रोगी को आधुनिक तीव्र मूत्रल औषधि न दें क्योंकि लंबे समय के बाद उससे किडनी खराब होती है। उसकी अपेक्षा यदि पेशाब में शक्कर हो या पेशाब कम होता हो तो नींबू का रस, सोडा बायकार्ब, श्वेत पर्पटी, चंद्रप्रभा, शिलाजित आदि निर्दोष औषधियों का उपयोग करना चाहिए। गंभीर स्थिति में रक्त मोक्षण (शिरा मोक्षण) खूब लाभदायी है किंतु यह चिकित्सा मरीज को अस्पताल में रखकर ही दी जानी चाहिए।

सरलता से सर्वत्र उपलब्ध पुनर्नवा नामक वनस्पति का रस, कालीमिर्च अथवा त्रिकटु चूर्ण डालकर पीना चाहिए। कुलथी का काढ़ा या सूप पीयें। रोज १०० से २०० ग्राम की मात्रा में गोमूत्र पीयें। पुनर्नवादि मंडूर, दशमूल क्वाथ, पुनर्नवारिष्ट, कुमारी आसव, दशमूलारिष्ट, गोक्षुरादि क्वाथ, गोक्षुरादि गुगल, जीवित प्रदावटी वगैरह का उपयोग दोषों एवं मरीज की स्थिति को देखकर करना चाहिए।

रोज १-२ ग्लास जितना लौहचुंबकीय जल (Magnetic water) पीने से भी किडनी के रोग में लाभ होता है। *-वैद्यराज अमृतभाई*

स्वामी श्री लीलाशाहजी उपचार केन्द्र, जहाँगीरपुरा, सूरत.

'यहाँ जीव को ब्रह्म बनाने की फैक्ट्री चलती है...'

वास्तव में लोकसंतों को लोकहित किये बिना चैन ही नहीं पड़ता। सेठ को धन मिलता है तो वह तिजोरी की ओर दौड़ता है किन्तु संत को जब आत्मज्ञान मिलता है तो वह उसे बाँटने के लिए समाज की ओर भागते हैं। आत्मज्ञान के धनी पूज्यपाद बापू गाँव, नगर, महानगर, देश-विदेशों में आत्मज्ञान का खजाना लुटा रहे हैं।

करीब १५-२० वर्ष पूर्व कुछ पर्यटक अमदावाद आश्रम में आये थे। आश्रम के एकान्त और प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण वातावरण से प्रभावित हुए बिना वे नहीं रह सके। उन्होंने पूछा :

''यहाँ क्या प्रवृत्ति होती है ?''

पूज्यश्री : ''त्रिकाल संध्या होती है।''

पर्यटक : ''और क्या होता है ?''

पूज्यश्री : ''ध्यान-भजन होता है।''

उन्होंने आश्चर्य से पूछा : ''इतनी सुन्दर जगह ! क्या यहाँ कुछ प्रवृत्ति नहीं होती ?''

तब पूज्यश्री ने कहा : ''यहाँ जीव को ब्रह्म बनाने की फैक्ट्री चलती है, फैक्ट्री।''

भौतिकता की चकाचौंध व पश्चिम के रंग में रंगे वे पर्यटक क्या जानें ब्रह्म और ब्रह्म बनाने

की फैक्ट्री ? उक्त वचनों को सुनकर मन में सहज स्फुरण होने लगता है कि पूज्यश्री के पावन सान्निध्य और मार्गदर्शन में साधनारत साधकगण निश्चय ही देर-सबेर ब्रह्मत्व को उपलब्ध होंगे ।

पूज्यश्री को न पहचानकर उन सैलानियों ने पूज्यश्री से ही पूछा : ''अच्छा ! बाबाजी कहाँ मिलेंगे ?''

विनोदी स्वभाव के पूज्य बापू ने लंबी दाढ़ीवाले एक शिष्य चन्दीराम की ओर इशारा कर दिया ।

चन्दीराम के पास जाने पर उन्हें पता चला :

'अरे ! हम तो ब्रह्मनिष्ठ पूज्य बापू से ही बात कर रहे थे... !'

ज्ञान के असीम भंडार व विनोदी स्वभाववाले पूज्यश्री के पावन सान्निध्य में ऐसी अनेक घटनाएँ घटित होती रहती हैं ।

फूल बना अंगारों को

बहुत हो गया देर भई, अब तो बुला बहारों को ।
अंजाना हूँ समझा दे, अपने दिव्य इशारों को ॥
लिया सहारा तेरा ही, जग के छोड़ सहारों को ।
एक बार फिर दिखला दे, अपने हँसी नजारों को ॥
कश्ती डगमग डोल रही, कर दे पास किनारों को ।
मंजिल पूरी कर दिखला, हँसते चाँद सितारों को ॥
इडा, पिंगला और सुषुम्ना, खोल दे तीनों द्वारों को ।
आतुर हंसा पान करेगा, सुख के चिर भण्डारों को ॥
ज्ञान दीप की ज्योति ले, दूर भगा अंधियारों को ।
हर क्षण सुमधुर शैली से, फूल बना अंगारों को ॥

- अशोक सिंह 'राजपूत'
लश्कर, ग्वालियर (उ. प्र.).

गौमाता : दुःख-दारिद्र्यहारिणी

[गतांक का शेष]

बर्तन साफ करने के लिए राख के रूप में अच्छा पाउडर मिल जाता है । अधजले कंडे की राख बहुत अच्छा दंतमंजन है । कंडे की आग पर मात्र ५ ग्राम घी डालने से सारा घर महक उठता है, घर का वातावरण शुद्ध होता है तथा रोगाणुओं का नाश होता है । घर में गाय रखने से भूत-प्रेतों का प्रकोप नहीं होता तथा चोरों से भी घर की रक्षा होती है । गाय का दूध, घी, मट्ठा पीने से आपको अपने खाने के विषय में कुछ सोचना ही नहीं है कि क्या खा रहे हैं ? प्रतिदिन मात्र २०० ग्राम दूध या मट्ठा लेने से ही आपके शरीर की सभी आवश्यकताएँ पूरी हो जाती हैं, शरीर निरोगी एवं स्वस्थ बनता है तथा निर्मल बुद्धि का विकास होता है । गाय के दूध, घी, मट्ठा, मूत्र तथा गोबर से इतनी औषधियाँ मिल जाती हैं कि गाय के रहते हुए आपको डॉक्टर की तलाश नहीं करनी पड़ेगी । इस तरह आर्थिक, बौद्धिक, धार्मिक तथा औषधीय सहायता देने के कारण गौमाता गोपालक को सुख, संतोष तथा हर तरह की खुशियाँ देती है । इसकी सेवा से दरिद्रता, दुःख एवं शोक-

संताप का नाश होता है तथा धन-वैभव और यश-कीर्ति बढ़ती है। यदि पूरे देश की अर्थव्यवस्था के स्तर पर गाय के गुणों का आकलन करें तो भी गोपालन ही एक ऐसा उद्यम है जिससे सबसे अधिक आमदनी होती है।

भारत में इस समय सबसे बड़ा संकट ऊर्जा तथा बेरोजगारी का है। इन दोनों संकटों के निवारण में गोवंश जितना योगदान कर रहा है, उतना योगदान शायद कोई दूसरा उद्योग नहीं कर सकता। गाय के गोबर से ईंधन तथा खाद मिलते हैं। गोपालन भारत में अनुमानतः १० करोड़ से अधिक परिवारों को रोजगार देता है। इसके सारे गुणों का विश्लेषण करना तो बहुत कठिन है परंतु आर्थिक विवेचन (सारणी-१) से पता चलता है कि गोवंश से प्रतिवर्ष लगभग ८०० अरब रूपयों की आय होती है। आर्थिक उदारीकरण की नीति के चलते हम अपने पास उपलब्ध भौतिक संसाधनों तथा उपयोगी पदार्थों का निर्यात कर रहे हैं और उनके बदले एड्स तथा बेरोजगारी जैसे रोगों का आयात करते जा रहे हैं, जो दरिद्रता बढ़ाने की निशानी है। जबकि गौमाता ग्रामीण क्षत्रों में आमदनी तथा रोजगार का मुख्य साधन है।

सारणी १ : गोवंश से प्राप्त अनुमानित आय

	आय का स्रोत	अनुमानित आय (करोड़ रूपयों में)
१.	दुग्ध उत्पादन : ३० करोड़ टन (दर : रू. ६ प्रति लीटर)	१८,०००
२.	कृषिशक्ति : ५०,००० मेगावाट प्रतिवर्ष	१५,०००
३.	परिवहनशक्ति (२.५ करोड़ बैलगाड़ियाँ)	१७,५००
४.	खाद्य : १०० करोड़ टन (दर : रू. २०० प्रति टन)	२०,०००
५.	ईंधन : ४३४ लाख टन कोयला (दर : रू. २००० प्रति टन)	८६८०
६.	अन्य (चमड़ा, हड्डी, खुर, सींग आदि)	५००
	कुल योग	७९,६८०

"तुम पाँच मिनट में बाहर होगे..."

परम पूजनीय बापूजी के श्रीचरणों में प्रणाम!

घटना ५ मार्च, १९९८ की है : उस दिन मेरी छाती में अचानक दर्द शुरू हुआ। डॉक्टरों ने कहा कि हृदय रोग है, इसका ऑपरेशन करना पड़ेगा।

ऑपरेशन करवाने के लिए पूज्य बापू से आज्ञा लेने की मैंने कोशिश भी की किन्तु बापूजी से मेरी बात नहीं हो पायी। अतः दिल्ली आश्रम से आज्ञा लेकर मैं अस्पताल में भर्ती हो गया।

जब डॉ. अशोक सेठ ने ऑपरेशन शुरू किया तो मैंने परम पूज्य बापूजी का ध्यान किया। उसी वक्त मुझे पूज्य बापूजी के दर्शन हुए। उन्होंने कहा : "**तुम्हें कुछ नहीं है। तुम पाँच मिनट में बाहर होगे।**" डॉक्टर ने चाकू से चीरा लगाया एवं कहा : "लंबा श्वास लो।"

मैंने लंबा श्वास लिया तो मेरा ध्यान लग गया। डॉक्टर ने पुनः कहा : "श्वास छोड़ो ताकि खून रुके।"

उस वक्त भी ध्यान में मुझे पूज्य बापूजी के दर्शन हो रहे थे। जैसे ही मैंने श्वास छोड़ी तो डॉक्टर ने कहा : "जो नाड़ी बदलनी थी, वह बिल्कुल ठीक है। अतः अब ऑपरेशन की कोई जरूरत नहीं है।"

मैं ठीक पाँच मिनट में ऑपरेशन थिएटर से बाहर था। उधर घर पर मेरी लड़की ने ध्यान किया तो उसे भी पूज्य बापू ने कहा :

"**रात्रि ९-३० बजे तेरे पिता घर पर होंगे।**"

रात्रि को लगभग ९ बजे जब डॉक्टर मुझे देखने आये तो उन्होंने घर जाने की सलाह दे दी। साथ ही उन्होंने यह भी कहा : "**मेरे जीवन का यह पहला केस है कि एक दिन में ही सब कुछ ठीक हो गया एवं सारी रिपोर्ट गलत साबित हो गयी!**"

यह सब परम पूज्यनीय बापूजी के ही आशीर्वाद हैं कि मैं आज तक ठीक हूँ।

- ओम मेहता
कीर्तिनगर, नई दिल्ली।

'त्रिविध तापों से बचने की युक्ति भी मिलती है...'

पूज्यश्री आसारामजी बापू के पावन प्रेरक मार्गदर्शन एवं आशीर्वाद से प्रकाशित **'ऋषि प्रसाद'** एक अलौकिक पत्रिका है । सचमुच, यह ऋषि-मुनियों का प्रसाद ही है । इस पत्रिका में पूज्य बापूजी की अमृतवाणी से न केवल घर बैठे सत्संग का लाभ मिलता है वरन् आत्मज्ञान की गंगा में गोता मारकर इस जीवन के तनाव, दुःख और त्रिविध तापों से बचने की युक्ति भी मिलती है और सुन्दर एवं सुखप्रद जीवन जीने की कला आती है । मुझे भी **'ऋषि प्रसाद'** पत्रिका की आजीवन सदस्यता प्राप्त करने का सौभाग्य मिला है ।

- बलरामजी दास टंडन
स्थानीय निकाय व रोजगार मंत्री,
चण्डीगढ़, पंजाब ।

*

पू. बापू के द्वारा आध्यात्मिक क्रांति

ज्ञान, भक्ति व योगमार्ग के समर्थ आचार्य, ध्यानयोग-वेदान्तनिष्ठ, ब्रह्मनिष्ठ, प्राणिमात्र के परम हितैषी परम पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू के श्रीचरणों में कोटि-कोटि वंदन !

पूज्य बापू ने हमारे लीमखेड़ा तहसील के अन्दरूनी इलाके में सन् १९९६ के दौरान आध्यात्मिक वाणी की मधुरता बरसायी और हजारों लोगों में ज्ञान, भक्ति एवं आध्यात्मिक क्रान्ति के बीज वपित किये । उन्होंने लोगों में उस गुरुभक्ति की याद दिलायी जैसी मतंग ऋषि के प्रति शबरी की एवं द्रोणाचार्य के प्रति एकलव्य की थी ।

आज इस क्षेत्र में गुरु-श्रद्धा के बल से कई गुरु-मंदिरों एवं देवी-मंदिरों का निर्माण हुआ है, जिससे इस क्षेत्र में धर्मान्तरण की प्रवृत्ति रुके और आध्यात्मिक उन्नति बढ़े । ऐसी प्रवृत्तियाँ श्री योग वेदान्त सेवा समितियों के द्वारा हो रही हैं, जो सराहनीय हैं ।

पूज्य बापू की अमी दृष्टि एवं उनके ध्यान-संगीत तथा योगवाणी के प्रथम अनुभव से मैं इतना तो कह ही सकता हूँ कि कलियुग के मध्य में अनेक तापों से तपते हुए इस विश्व के मनुष्यों को देवत्व की ओर बढ़ने के लिए प्रेरक मार्गदर्शन देकर विश्व में एक आध्यात्मिक क्रांति का सर्जन पूज्य बापू कर रहे हैं । वास्तव में वे इस धरती पर अलौकिक शक्ति के अवतार हैं ।

- जशवंत एस. भाभोर
चेयरमैन
गुजरात राज्य आदिजाति निगम, गाँधीनगर ।

*

'सत्पुरुषों के आशीर्वाद से ठीक होगा...'

प्रो. राजेन्द्र सिंह
सरसंघचालक, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ
प्रधान कार्यालय, नागपुर (महा.).
दिनांक : ६-४-'९९
वै. कृ. ६, युगाब्द ५१०१

परम पूज्य संत श्री आसारामजी,

सविनय प्रणाम !

कल दिनांक : ७ अप्रैल को आपका

जन्मदिवस है। उस उपलक्ष्य में आपको बधाई ! आप दीर्घ काल तक हिन्दुओं का मार्गदर्शन करते रहें, यह अभिलाषा है।

मैं दिनांक : १८ फरवरी से अस्थिभंग के कष्ट को सह रहा हूँ। कूल्हे की हड्डी का जोड़ अब ठीक हुआ है। उस पर वजन देकर चलने का अभ्यास कर रहा हूँ। हाथ की हड्डी अभी जुड़नी शेष है। अतः प्रवास बंद है। आशा है, आप जैसे सत्पुरुषों के आशीर्वाद से सब कुछ ठीक होगा।

✲ **अमदावाद** : पूर्णिमा दर्शन महोत्सव के दिन ३१ मार्च को हजारों पूनम व्रतधारी साधकों ने पूज्य गुरुदेवश्री का दर्शन-सत्संग प्राप्त कर अन्न-जल ग्रहण किया।

आत्मपथ के राही इन साधक-समुदाय को पूज्यश्री ने ईश्वर से एकत्व स्थापित कर पवित्र जीवन जीने की प्रेरणा दी तथा जीवन के अनुकूल-प्रतिकूल प्रसंगों में सम व प्रसन्न रहने की कला बतायी।

✲ **बायड (गुज.)** : पूनम व्रतधारी साधकों की अधिकाधिक संख्या को ध्यान में रखते हुए पूज्य स्वामीजी अमदावाद आश्रम में ३१ मार्च को मध्याह्न १२ बजे तक पूनम दर्शनोत्सव के लिए रुके रहे। पूनम दर्शनोत्सव संपन्न होने के पश्चात् पूज्यश्री ने बायड़ के नवनिर्मित आश्रम के लिए प्रस्थान किया जहाँ तीन दिनों ३१ मार्च से २ अप्रैल तक गीता भागवत सत्संग-वर्षा से बड़ी संख्या में लोग लाभान्वित हुए। नवनिर्मित सत्संग-भवन का उद्घाटन व निर्माणाधीन विशाल प्याऊ के लिये चयनित स्थल पर भूमिपूजन गुजरात राज्य के ऊर्जा एवं शहरी विकास मंत्री श्री कौशिकभाई पटेल के द्वारा किया गया।

गुजरात राज्य के परिवहन मंत्री श्री विमलभाई शाह द्वारा आश्रम के पास से गुजरनेवाले मुख्य मार्ग का नामकरण 'आश्रम रोड' किया गया।

उक्त दोनों मंत्रीश्री आत्मा-परमात्मा को स्पर्श कर आनेवाली, पूज्यश्री की अमृतवाणी का घण्टों रसपान करते रहे।

✲ **हिम्मतनगर** : एकान्तस्थली हिम्मतनगर आश्रम में ७ अप्रैल को पूज्यश्री का ५८ वाँ जन्मोत्सव बड़ी धूम-धाम से मनाया गया। इस अवसर पर आश्रम के प्राकृतिक

वातावरण में विशाल भंडारे का आयोजन हुआ जिसमें गुजरात राज्य के अलावा देश के विभिन्न प्रान्तों से हजारों साधकों का आगमन हुआ।

इस अवसर पर भारी संख्या में उपस्थित साधकवृंद को संबोधित करते हुए योग-वेदान्त के अनुभवनिष्ठ पूज्य बापू ने कहा :

''भगवान के जन्म और कर्म दिव्य होते हैं। मैं उस दिन का इन्तजार कर रहा हूँ कि भगवान के कर्मों की दिव्यता तुम्हारे जीवन में आ जाए । ब्रह्मज्ञानी महापुरुषों के जीवन की दिव्यता तुम्हारे जीवन की दिव्यता बन जाये ।''

भगवान श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं :

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥

'हे अर्जुन ! मेरे जन्म और कर्म दिव्य अर्थात् निर्मल और अलौकिक हैं- इस प्रकार जो मनुष्य तत्त्व से जान लेता है, वह शरीर को त्यागकर फिर जन्म को प्राप्त नहीं होता, किन्तु मुझे ही प्राप्त होता है।' **(गीता : ४.९)**

*

देश भर में जगह-जगह पूज्यश्री का ५८ वाँ जन्मोत्सव मनाया गया

ब्रह्मनिष्ठ पूज्यपाद बापू के ५८वें जन्मोत्सव पर ७ अप्रैल को देश के विभिन्न भागों में भव्य संकीर्तन यात्राओं व भण्डारों का आयोजन हुआ। इस अवसर पर अनेक जगह निःशुल्क छाछ केन्द्र, विडियो सत्संग, विद्यालयों में सस्ते दामों पर कापियों व नोटबुकों के वितरण का आरंभ हुआ।

कोटड़ा छावनी व आसपास के गरीब गाँवों में हर वर्ष की भाँति इस वर्ष भी निःशुल्क छाछ केन्द्र चलाया जा रहा है जिसमें ९७६२ गरीब आदिवासियों को एल्युमिनियम के बर्तनों में छाछ ले जाते हुए देखकर 'उन्हें आगे चलकर आँतों की तकलीफें होंगी' ऐसा सोचकर दूरदर्शी लोकसंत पूज्य बापू ने छाछ केन्द्र कार्डधारकों को उनके लिए स्टील की बर्नियाँ बाँटने की आज्ञा दी। आज्ञा मिलते ही बाजार से बड़ी संख्या में ढेर सारी बर्नियाँ खरीदी गयीं। व्यवस्था ऐसी कि एक रूपये की हेराफेरी नहीं। जिसके लिए जो आदेश हुआ वह उन्हीं के हाथों में पहुँचा। सेवकों का नैतिक श्रद्धायुक्त व्यवहार अत्यंत सराहनीय था। आश्रम से दी हुई वस्तुओं की रास्ते में हेराफेरी नहीं होती। पूज्य बापू द्वारा दी हुई वस्तु एक की ढाई, सौ की ढाई सौ होकर गरीबों तक पहुँच जाती थी। इस प्रकार सेवकों द्वारा ऐसी पवित्र सेवा हो जाती थी। सरकारी तिजोरी से निकला हुआ एक रूपया गरीबों तक कितना पहुँचता है यह तो अल्लाह जानें और आप जानें लेकिन बापू के हाथ से निकली हुई एक चीज ढाई होकर पहुँचती है। सेवकों की ऐसी सेवा और श्रद्धा देखते ही बनती थी।

* **इन्दौर** : इन्दौर नगर में महापौर श्री मधुकर वर्मा और विधायक श्री रामलाल वर्मा पूज्यश्री की भव्य तस्वीर से निर्मित झाँकी का पूजन-अर्चन कर विशाल संकीर्तन यात्रा में सम्मिलित हुए। इस अवसर पर श्री वर्मा ने कहा कि :

''श्री आसारामजी बापू ने भक्तजनों को हमेशा कल्याण के रास्ते पर चलने की प्रेरणा दी है। यह प्रेरणा देश के उत्थान के लिए मील का पत्थर साबित होगी।''

* **कड़ोली (गुज.)** : साबरकाँठा जिले में स्थित यह छोटा-सा ग्राम तीन दिनों १६ से १८ अप्रैल तक ज्ञान-भक्ति-योग वर्षा का केन्द्र बना रहा। अंतिम दिन विशाल भंडारे का आयोजन हुआ।

*

* **चण्डीगढ** : पूज्यश्री के ५८वें अवतरण दिवस के उपलक्ष्य में श्री योग वेदान्त सेवा समिति, चण्डीगढ़ द्वारा एक भव्य समारोह का आयोजन किया गया जिसमें लगभग ६,००० साधकों और श्रद्धालुओं ने उत्साहपूर्वक भाग लिया। ग्यारह बजे से श्रीआसारामायण का पाठ किया गया। मध्याह्न १२ बजे कार्यक्रम के मुख्य अतिथि हरियाणा राज्य के खाद्य एवं आपूर्ति मंत्री श्री गणेशीलाल ने सभी को पूज्यश्री के अवतरण दिवस पर बधाइयाँ देते हुए दीप प्रज्वलित किया। तत्पश्चात् विशाल भण्डारे में पूज्यश्री का प्रसाद वितरण किया गया। ढाई बजे एक विशाल शोभायात्रा का आयोजन किया गया जो कि शहर की अनेक सड़कों पर हरिनाम की धूम मचाते हुए शाम के करीब छः बजे समिति के कार्यालय पर आरती के साथ समाप्त हुई।

❋ **फिरोजाबाद (उ. प्र.)** : दिनांक : २२ से २५ अप्रैल तक यहाँ ज्ञान-भक्ति-योगवर्षा का आयोजन हुआ जिसमें प्रथम दो दिवस श्री सुरेशानंदजी द्वारा प्रवचन दिये गये। दिनांक : २३ अप्रैल को काँच कला में कुशल सुहाग सजाने में प्रसिद्ध इस नगरी में पूज्य गुरुदेव का पदार्पण हुआ। खचाखच भरे हुए जनसमुदाय से विशाल पाण्डाल भी नन्हा पड़ गया। हजारों-हजारों श्रद्धालु लोग पाण्डाल के बाहर खड़े होकर सत्संग सुनते रहे। काफी समय से प्रतीक्षारत नगरवासियों के आनंद का पारावार न रहा। वे खूब नाचे-झूमे व आनंद में फूले नहीं समा रहे थे। **न भूतो न भविष्यति** ऐसे इस कार्यक्रम में फिरोजाबाद की धर्मप्रेमी जनता के अलावा लखनऊ, कानपुर, इलाहाबाद, बनारस, दिल्ली, गाजियाबाद व उत्तर भारत के दूर-सुदूर क्षेत्रों से बड़ी संख्या में आये हुए लोगों ने पूज्यश्री की आत्मस्पर्शी अमृतवाणी का रसपान किया।

गीता के मर्मज्ञ योगनिष्ठ पूज्यपाद बापू ने सारगर्भित सूत्रात्मक वाणी में कहा :

''भगवान व भगवद्प्राप्त महापुरुष शरीर को 'मैं' नहीं मानते। शरीर व मन की पीडा को अपना नहीं मानते। ये प्रकृति के हैं। इनमें बदलाव होता रहता है। वे सच्चिदानंदस्वरूप परमात्मा को अपना स्वरूप मानते तथा जानते हैं जो कभी नहीं बदलता।

तन-मन बदलता है, धंधा-रोजगार बदलता है लेकिन तुम्हारा वास्तविक स्वरूप कभी नहीं बदलता। यह जिस समय जान लोगे उसी समय तुम्हारा तो परम कल्याण हो ही जायेगा, तुम्हारे संपर्क में आनेवाला भी निहाल हो जायेगा।''

एकादशी व्रत की महिमा बताते हुए पूज्यपाद बापू ने कहा :

''एकादशी व्रत पापनाशक तथा पुण्यदायी व्रत है। प्रत्येक व्यक्ति को माह में दो दिन उपवास करना चाहिए। इससे आध्यात्मिक लाभ के साथ-ही-साथ शारीरिक लाभ भी होता है। गर्मी के मौसम में पित्त और वायु के झपेटे से बचने के लिए खेत-खलिहानवाले कभी-कभार प्याज का उपयोग कर लें और गर्मी के झपेटे से बचने के लिए पके पेठे (कोहड़े) की सब्जी आदि का उपयोग करें।''

तन-मन की तदुरुस्ती और बुद्धि में बुद्धिदाता का ज्ञान पाकर उत्तर भारत के सत्संगी धन्य हो गये।

पूज्य बापू के अन्य सत्संग-कार्यक्रम

दिनांक	शहर	कार्यक्रम	समय	स्थान	संपर्क फोन
२८ अप्रैल से २ मई '९९	दिल्ली में	पाँचवाँ विश्वशांति सत्संग समारोह प्रथम दो दिन श्री सुरेशानंदजी द्वारा	सुबह ९-३० से ११-३० शाम ३-३० से ५-३०	सी. बी. डी. ग्राउण्ड, कड़कड डूमा कोर्ट के सामने, दिल्ली।	२४६५३०२, २०४६७८३. आश्रम : ५७२९३३८, ५७६४१६१.
१० से १२ मई '९९	हरिद्वार में	ध्यान योग साधना शिविर	-	संत श्री आसारामजी आश्रम, हरिपुरकला, सप्त सरोवर, हरिद्वार।	(०१३३) ४६१२५९
१३ से १६ मई '९९	(,,)	विद्यार्थी तेजस्वी तालीम शिविर	-	(,,)	(,,)
२४ से २६ मई '९९	(,,)	ध्यान योग साधना शिविर	-	(,,)	(,,)
२७ से ३० मई '९९	(,,)	ध्यान योग साधना शिविर	-	(,,)	(,,)

पूर्णिमा दर्शन : ३० अप्रैल '९९ दिल्ली में ❋ ३० मई '९९ हरिद्वार में।
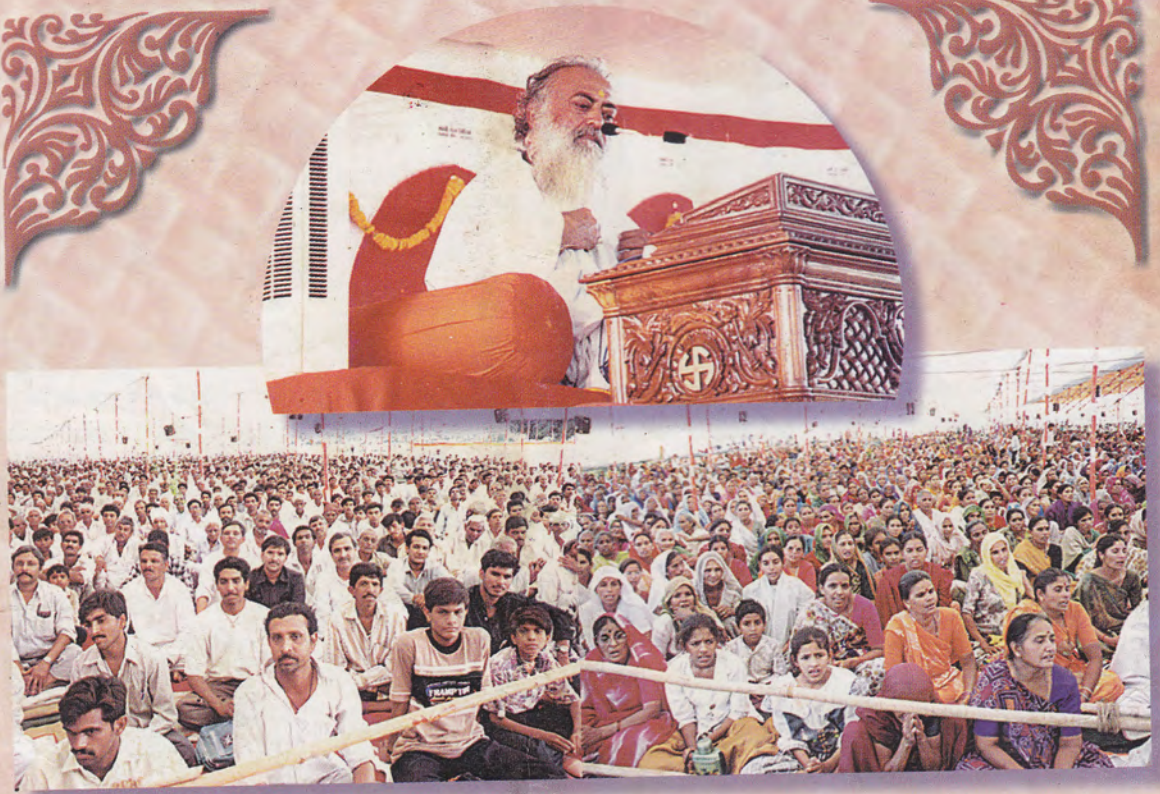
गीता भागवत सत्संग समारोह, कड़ोली में पूज्यश्री की दिव्य पीयूषवाणी का पान करता हुआ विशाल जनसैलाब।

नारद जयंती

(२ मई '९९)

नरस्येदं नारम्।

नारं ददातीति नारदः।

नार = नर-सम्बन्धी ज्ञान अथवा नर-नारायण से उपलब्ध ज्ञान, उसका जो दाता, वह नारद।

नरस्येदं नारं = नर-सम्बन्धी अज्ञान, उसे द्यति = मिटानेवाले को नारद कहते हैं।

नार = मनुष्य के हृदय में अन्तर्यामी रूप से विराजमान परमात्मा, अथवा नराकृति परमब्रह्म भगवान् कृष्ण। उनका जो जन-जन के हृदय में स्थापन करे वह नारद।